RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 2 मई 2015

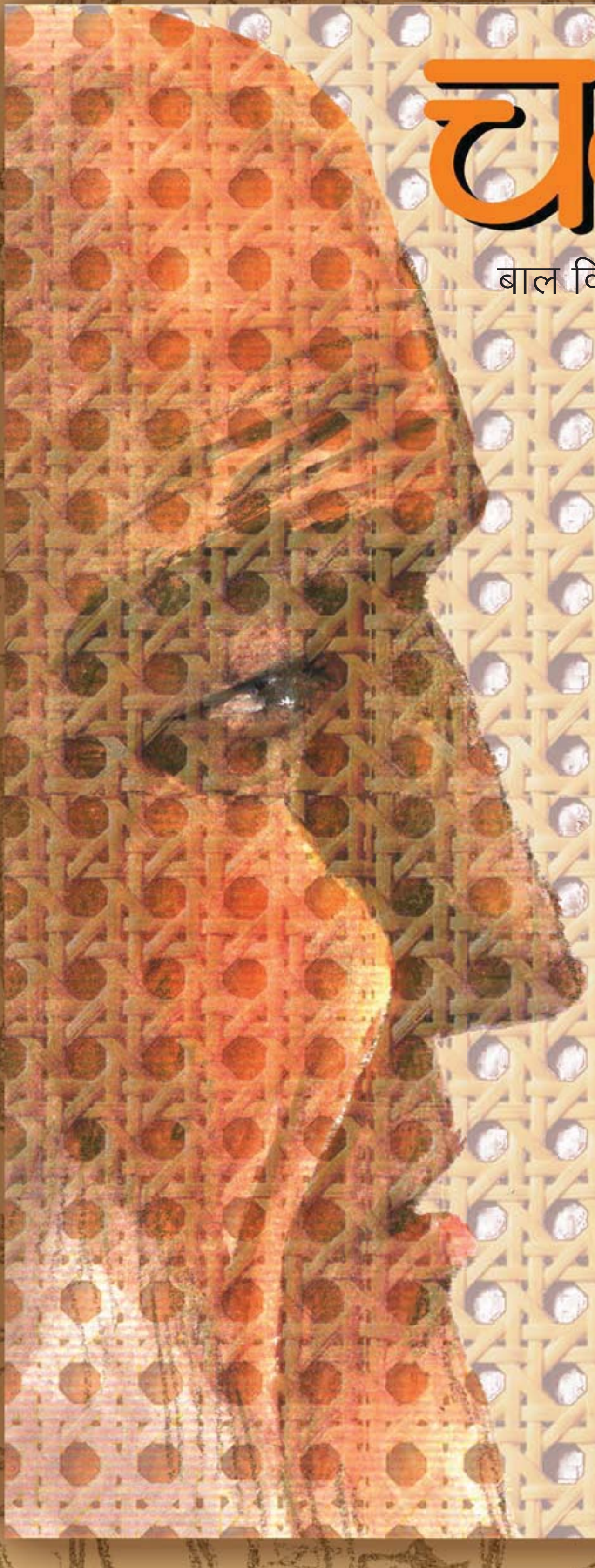

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका मई 2016

छोटे-छोटे षट्कोण बनाते हुए घेरों के अन्दर असंख्य खानों के बीच उनकी उँगलियाँ पतले बेंत को तेज़ी-से अन्दर, बाहर और लकड़ी में बने छेदों में पिरो रही थीं।...

पेज 16 पर

मूल्य ₹ 50

जगहों के नाम

जब हम किसी जगह को
नाम में बदल देते हैं
जैसे धूपगढ़
जैसे रजत प्रपात
या फिर हाण्डी खोह
तो हम अपनी आँखें
बस वहीं के लिए बचाकर चलते हैं
रास्ते में
साल के फूल महकते हैं –
व्यर्थ।
पक्षी की छाया घास पर उड़ती है –
व्यर्थ।
जंगल-पहाड़ से होते हुए
हम केवल एक नाम तक पहुँचते हैं।

- तेजी ग्रोवर

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

चकमक:0755- 4252927 9425010115 chakmak@eklavya.in

चकमक कविता कार्ड

*पढ़ो और फिर चाहो तो अपने दोस्त को
इसी कार्ड के दूसरी तरफ
एक चिट्ठी लिख दो।*

कविता कार्ड के
चार गुच्छे।
एक गुच्छे में
बारह कविताएँ।
एक गुच्छे की कीमत है
पचास रुपए।

इन्हें
मँगाने के लिए तुम
चकमक के पते पर
लिख सकते हो। या हमें फोन कर सकते हो।
या चाहो तो सीधे ऑनलाइन मँगा लो -
Http://www.eklavya.in/pitara/chakmak_kavita_cards

इस अंक में

4 परछाईं / उदयन वाजपेयी
6 अगर-मगर / गुलज़ार के जवाब
8 प्यारे भाई रामसहाय / स्वयं प्रकाश
10 बस्ती / इन्तज़ार हुसैन
13 मेरा दोस्त गुलमोहर / देवांशी जैन
14 कलकत्ता / शंख घोष
16 मुन्ना बुनाईवाला / प्रियम्वद
19 वो हमारे क्या लगते हैं? / बीहू
20 पिता को बेटी की चिट्ठी / रोशनी आर्या
22 पलानिया / प्रभात
24 क्या कीट भी बोलते-सुनते हैं? / डॉ. भरत पुरे
28 ...और हाथी क्या सोचते होंगे? / कार्ल सफीना
32 बिचौली गाँव के लड़के / रमेश उपाध्याय
35 एक था हाजी एक था नाजी / स्वयं प्रकाश
36 बोली रंगोली / गुलज़ार
39 एक खत / रमाकान्त अग्निहोत्री
40 चुनाव / सचिन किराड़े
41 राष्ट्र और राष्ट्रवाद / कुमकुम रॉय
45 कन्छेदी / सुशील शुक्ल
46 मैदान / नील
47 एक अदना-सा नायाब तोहफा / याशी महेन्द्रा
48 चित्र पहेली / कविता तिवारी

बाल विज्ञान पत्रिका
चकमक
अंक 356 मई 2016

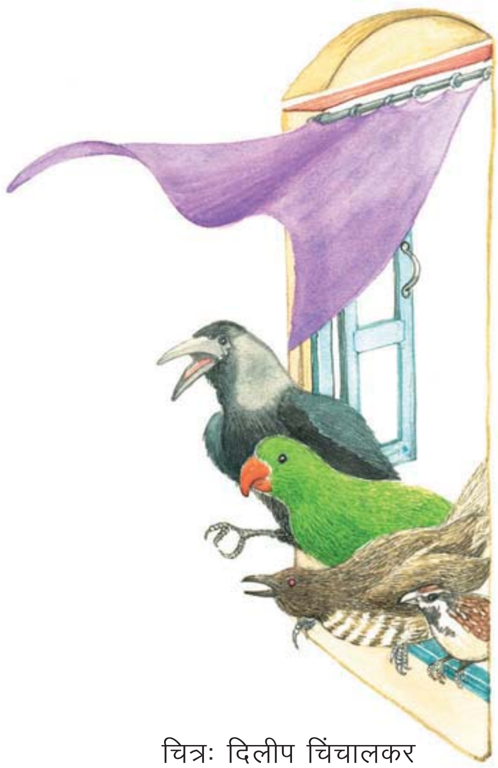

चित्रः दिलीप चिंचालकर

सूरज हर चीज़ की परछाईं बनाता दिखाई देता। पेड़ तले पेड़ की परछाईं बनती। एक चुटकी परछाईं उठाते तो हाथ में एक चुटकी धूल आती। सूरज पहले रोशनी बनाता और फिर परछाईं। दिखनेवाली चीज़ की परछाईं दिखती। हवा की उड़ती परछाई न दिखती। पानी की परछाई न दिखती। नदी बहती रहती पर उसकी परछाई न दिखती। चीज़ों की परछाईं उनके तले बनती। ज़मीन पर। एक नीम के पेड़ के तले हमारा घर था। नीम की परछाईं की तरह। ऐसे में नीम की परछाईं हमारे घर की छत पर रहती। जब नीम की पत्तियाँ झरतीं तो घर की उतनी परछाईं भी झर जाती।

आवरण चित्र
अतनू राय
अनमोल श्रीवास्तव

डिज़ाइन
डिजिटल एक्सप्रेशन्स

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव
ब्रजेश यादव

तक्षशिला एजुकेशन सोसाइटी के वित्तीय सहयोग से विकसित

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एक प्रति	: 50.00	तीन साल	: 1350.00
वार्षिक	: 500.00	आजीवन	: 6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

एकलव्य ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

परछाईं

उदयन वाजपेयी

परछाईं कहाँ से आती है? पता नहीं चलता। सूरज जब एक जगह डूबता है, दूसरी जगह उग आता है। ऐसा ही कुछ चन्द्रमा के साथ होता है। वे जाते हैं तो पता रहता है कि वे कहाँ गए हैं। पर देर शाम जब पेड़ों के नीचे किसी जाल की तरह फैली या हमारे आगे चलती और लम्बी होती जाती परछाईं लोप होती है, पता नहीं चलता वह कहाँ चली गई है। शायद वह अँधेरे में घुल जाती हो। घुल जाती हो या अँधेरे में गुम हो जाती हो। शायद रात का अँधेरा उसे अपने में मिला लेता है। वह उसे अपने में इसलिए मिला लेता है क्योंकि वह अँधेरे जैसी ही है।

परछाईं दिन की रोशनी में छूटा हुआ रात का अँधेरा ही है जो सूरज की चकाचौंध में भी बचा रह जाता है।

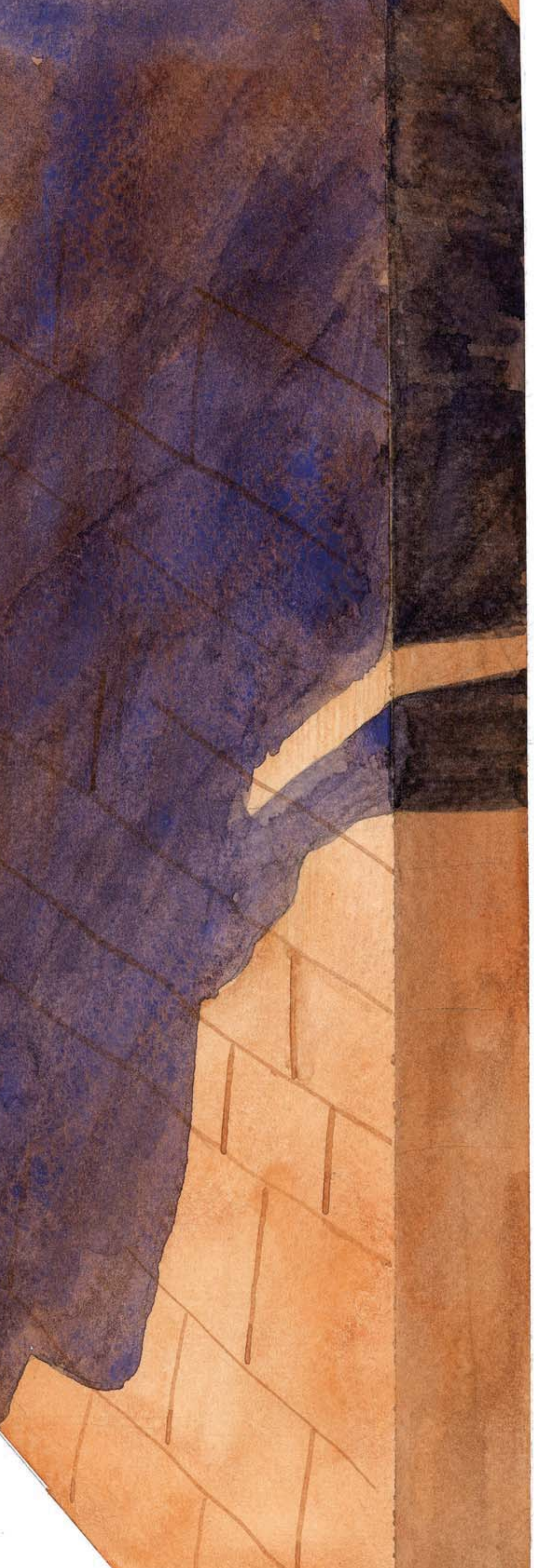

जब सूरज का उजाला हमारे हर ओर से रात के अँधेरे के एक-एक कतरे को ढूँढ-ढूँढकर मिटा रहा होता है, थोड़ा-सा अँधेरा हमारे पीछे, बिलकुल हमसे सटकर या पेड़ों से चिपककर या पक्षियों के पंखों में लिपटकर छिप जाता है। जैसे ही सूरज का उजाला अँधेरे की खोज बन्द कर देता है, वह चुपचाप धरती पर फैलने लगता है, परछाईं बनकर।

परछाईं दिनभर हमसे सटकर इसीलिए फैली रहती है कि अगर उस पर सूरज की नज़र पड़ जाए, वह भागकर हमारे पीछे छिप जाए। परछाईं रात का इन्तज़ार करती है कि उसे सूरज से लुकाछिपी न खेलना पड़े और वह उस अँधेरे में समा जाए जिससे बिछुड़कर वह दिनभर भटकती रहती थी।

चित्रः तापोशी घोषाल

अगर-मगर के लिए तुम भी अपने सवाल भेज सकते हो। हमें तुम्हारे सवालों का इन्तज़ार रहेगा।

1 हमारे पास रंग कहाँ से आते हैं?

- सारा गौतम, तीसरी, डी.पी.एस. इं. एज, गुड़गाँव

जवाबः पहले पहल सूरज से आते थे। अब दुकान से आते हैं।

2 दुनिया क्यों बनी?

- मायरा, तीसरी, डी.पी.एस इं. एज., गुड़गाँव

जवाबः मैंने नहीं बनाई। मम्मी ने बनाई होगी उनसे पूछो।

अगर मगर

3 भगवान कैसे बने?

- अनन्या, तीसरी, डी.पी.एस इं. एज, गुड़गाँव

जवाबः तुम्हीं तो दिन-रात उसे बनाते हो।

4 क्या आपने कभी चोरी की? उसका प्लान कैसे बनाया?

- आशी, 12 साल, जयपुर

जवाबः की थी। मगर पकड़े गए। मुँह पर मक्खन लगा रह गया।

5 कोई आपके काम की खिल्ली उड़ाए तो

- आर्यमन पाण्डेय, छठी, कैम्पियन स्कूल, भोपाल

जवाबः तो खिल जाता हूँ।

6 स्कूल में पढ़ने के बाद भी घर में क्यों पढ़ना पढ़ता है?

- सुकुमारी भोई, आठवीं, शा. उच्च. प्रा. शाला, बोईरमल, छत्तीसगढ़

जवाबः पढ़ाई की सिखाई भी तो ज़रूरी है ना।

7 क्या आपने कभी अपने टीचर से डाँट खाई है?

- सुनीता सक्सेना, 13 साल, दिल्ली

जवाबः खाने में वही सब से ज़्यादा खाई।

8 ज्वालामुखी क्यों फटती है?

- असमिता प्रधान, आठवीं, शा. उच्च. प्रा. शाला, बोईरमल, छत्तीसगढ़

जवाबः अन्दर की गर्मी हद से ज़्यादा बढ़ जाए तो गुस्से में फट जाते हैं।

9 मैंने एक कुत्ते की पूँछ सीधी देखी है? फिर क्यों कहते हैं कि कुत्ते की पूँछ कभी सीधी नहीं होती?

- वरुण सूद, सातवीं, लखनऊ

जवाबः उसे म्यूज़ियम में रखें या आपको?

10 आपका बचपन में कोई दोस्त था? उसके साथ क्या प्लान करते थे?

- राहुल, 14 साल, जयपुर

जवाबः होमवर्क से कैसे गुठली मारी जाए।

11 चींटी इतनी छोटी और हाथी इतना बड़ा क्यों होता है?

- अमन यादव, सातवीं, देवास

जवाबः मैंने दोनों को देखा था। जब वो एक दिन के थे। इसलिए पता न चला कौन बड़ा है, कौन छोटा।

12 पृथ्वी पर हवा नहीं होती तो क्या होता?

- रितेश, आठवीं, शा. उच्च. प्रा. शाला, बोईरमल, छत्तीसगढ़

जवाबः तो फिर कौन होता?

13 आप खाली टाइम में क्या करते हैं?

- निलाक्षी डिगरसे, आठवीं, भोपाल

जवाबः खाली टाइम होता कहाँ है? जब कुछ नहीं करते तो, सोचा करते हैं। जब सोचते नहीं तो सोया करते हैं।

चित्रः अतनु राय

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश

रोज़ तो प्रार्थना के बाद एक-एक करके छात्रों की सारी कतारें अपनी-अपनी कक्षा में चली जाती थीं, लेकिन एक दिन ऐसा नहीं हुआ।

पी टी आई होलकर सर ने सामने खड़े होकर कुछ बोलना शुरू कर दिया।

उन्होंने बताया कि रेलवे स्टेशन से चार किलोमीटर दूर एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई है। बड़ी संख्या में घायलों को हमारे शहर के अस्पतालों में लाया जा रहा है। बुरी तरह घायल यात्री ज़िन्दगी और मौत के बीच झूल रहे हैं। डॉक्टर लोग लगे हुए हैं लेकिन दिक्कत ये आ रही है कि खून नहीं मिल पा रहा है। इस समय घायलों की जान बचाने के लिए खून की सख्त ज़रूरत है। अस्पताल की टीम यहाँ आई हुई है। जो छात्र अट्ठारह साल से ऊपर के हैं और खून देना चाहते हैं वे चार कदम आगे आ जाएँ। ध्यान रहे, जितना खून तुम्हारे जिस्म से निकाला जाएगा, उतना चौबीस घण्टे में दोबारा बन जाएगा। तुम्हें कोई नुकसान नहीं होगा।

छात्रों में खुसर-पुसर होने लगी।

बड़ी देर तक एक भी छात्र आगे नहीं आया।

सब बड़ी कक्षा के लड़कों की तरफ देख रहे थे।

वहाँ यह हाल था कि कोई आगे आना भी चाहता था तो दूसरे उसे डराकर रोक लेते थे।

कोई कहता, "अबे साले! खून देने से टीबी हो जाती है!"

कोई कहता, "पता है, आदमी कमज़ोर हो जाता है खून देने से!" वगैरह

होलकर सर को बहुत बुरा लग रहा था कि उनके स्कूल के बच्चे इतने डरपोक निकले! उनके समझाने के बावजूद एक बच्चा भी आगे नहीं आया।

लेकिन वे कुछ कहते इससे पहले ही हमारी कक्षा का राधेश्याम सीना ताने लाइन से आगे निकलकर सावधान की मुद्रा में खड़ा हो गया।

होलकर सर ने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"
"राधेश्याम!"
"उम्र क्या है?"
"अठारह साल।"

हम जानते थे राधेश्याम झूठ बोल रहा है। उसकी उम्र सोलह से ज़्यादा नहीं है।

होलकर सर बड़ी कक्षाओं की तरफ देखकर बोले, "देखो! इसे कहते हैं बहादुर बच्चा! कुछ सीखो! कुछ शर्म करो!"

फिर धीरे-धीरे बड़ी कक्षाओं से भी आठ-दस बच्चे निकालकर आए। लेकिन हमारा राधेश्याम उस दिन सारे स्कूल का हीरो बन गया।

कुछ दिन बाद राधेश्याम को एक प्रशंसापत्र मिला जिस पर राज्यपाल के हस्ताक्षर थे। यह इतनी बड़ी बात थी कि हमें राधेश्याम पर ही नहीं खुद अपने आप पर भी गर्व होने लगा।

राधेश्याम के पिताजी की किराने की दूकान थी सियागंज में।

उस साल क्या हुआ कि राधेश्याम के पिताजी की तबियत खराब हो गई। राधेश्याम को दुकान पर बैठना पड़ा और कोई डेढ़ महीने वह स्कूल नहीं आ सका। बीच-बीच में एक दिन के लिए आता, बताता कि बाबूजी बीमार हैं। दुकान पर नहीं बैठ सकते, मैं ही सब करता हूँ। माल लाना, बेचना, हिसाब रखना, उधारी चुकाना वगैरह। दुकान का टाइम सुबह नौ से रात आठ का है। स्कूल कैसे आऊँ, यार कुछ समझ में नहीं आ रहा है। इस साल मैं परीक्षा में क्या लिख पाऊँगा? सारे पीरियड तो मिस होते जा रहे हैं!

हम लोगों ने तय किया कि सब दोस्त राधेश्याम के लिए अपने बैग में एक-एक कॉपी एक्स्ट्रा रखेंगे और उसमें एक-एक विषय का होमवर्क उतारते जाएँगे, ताकि जब राधेश्याम आए तो उसे सब तैयार मिले।

जब परीक्षा आई तो राधेश्याम ने पाया कि उसे कुछ भी नहीं आता! वह बुरी तरह घबरा गया। उसने हमें भी कुछ नहीं बताया। हमारी दी हुई कॉपियों को देखकर वो और ज़्यादा घबरा गया कि इतने कम समय में इतना सब कैसे याद करेगा! आमतौर पर हमारी बहुत सारी समस्याएँ राधेश्याम सुलझा दिया करता था, लेकिन उसने अपनी यह समस्या हम में से किसी को नहीं बताई।

वह सोच ही रहा था कि इस साल परीक्षा में न बैठे, लेकिन तभी बड़ी कक्षा के एक लड़के दयाराम ने उसे नकल करने की तरकीब सुझाई। दयाराम ने राधेश्याम से कहा कि वह बिलकुल चिन्ता न करे। उसके लिए पर्चियाँ भी वह बना देगा और कि वह खुद तीन साल से यही कर रहा है, कोई नहीं देखता!

अपनी घबराहट में राधेश्याम उसकी बातों में आ गया।

इससे पहले राधेश्याम ने कभी नकल नहीं की थी इसलिए नकल करते हुए उसके हाथ-पाँव कँपने लगे और वह आसानी से पकड़ा गया।

और उसे पकड़ा भी तो किसने? होलकर सर ने।

(शेष भाग पेज 27 पर)

बस्ती

इन्तज़ार हुसैन

इन्तज़ार हुसैन की किताब बस्ती, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती है।

बन्दरों का अजब दौर था। आते और आते ही चले जाते। जाते तो इस तरह जाते कि कोठों पर तो क्या, करबला के पासवाली इमलियों पर भी नज़र न आते। छतें सुनसान, मुँडेरें वीरान। सिर्फ ऊँचे कोठों की टूटी-फूटी बुर्जियाँ यह याद दिलातीं कि ये ऊँचे कोठे कभी बन्दरों के फेरे में थे।

और उस शाम क्या हुआ था! गली से गुज़रते-गुज़रते उसे ऐसा लगा जैसे उसके सिर पर एक मुँडेर से सामनेवाली मुँडेर पर कोई कूदा है। नज़र उठाई तो क्या देखा कि बन्दरों की एक कतार मुँडेर-मुँडेर चली जा रही है। “अरे बन्दर,” उसके मुँह से निकला और दिल धक-से रह गया। दूसरे दिन जब वह सुबह सोकर उठा तो घर में और घर से बाहर शोर मचा हुआ था। आँगन में रखी हुई चीज़ें या तो टूट-फूट गई थीं या गायब हो गई थीं। एक बन्दर अम्मी का दुपट्टा ले उड़ा था और सबसे ऊँचेवाले कोठे की मुँडेर पर बैठा उसे दाँतों में दबाकर तार-तार कर रहा था।

बन्दर जाने किस-किस बस्ती से किस-किस जंगल से चलकर आए थे। एक काफिला, दूसरा काफिला, काफिले के बाद काफिला। एक मुँडेर से दूसरी मुँडेर पर, दूसरी मुँडेर से तीसरी मुँडेर पर। भरे आँगनों में लपक-लपक उतरना, चीज़ों की उचक, यह जा वह जा।....

बन्दरों ने दिनों-हफ्तों धूमें मचाईं। अचानक-हमला, लूटमार और अन्त में आपस में मारामारी उसके बाद गायब। छतें फिर सुनसान मुँडेरें फिर वीरान। मगर जब बिजली आई थी, उन दिनों वे बस्ती में थे और मुँडेर-मुँडेर नज़र आते थे। खम्बे जो मौसमों के सितम सहते-सहते मँजर में रुल-मिल गए थे,

अचानक फिर ध्यान का केन्द्र बन गए। मज़दूर लम्बी-लम्बी सीढ़ियाँ कँधों पर उठाए प्रकट हुए। खम्बों के ऊपरी सिरों पर सलीबी अन्दाज़ में सलाखें लगीं, सलाखों में सफेद-सफेद चीनी के-से गुटके दुरुस्त हुए। एक खम्बे से दूसरे खम्बे तक, दूसरे खम्बे से तीसरे खम्बे तक तार ताने गए और सड़क-सड़क खम्बों पर तार खिंचते चले।

फ़िज़ा में एक नए वाकिए ने शक्ल अख्तियार कर ली थी और परिन्दों के पँजे टिकाने के लिए नए ठिकाने मिल गए थे। रूपनगर के परिन्दे अब मुँडेरों और दरख्तों की शाखों के मुहताज नहीं रहे थे। कौवे मुँडेरों पर बैठे काँय-काँय करते थक जाते तो वहाँ से उड़ते और किसी तार पर झूलने लगते। कोई नीलकण्ठ, कोई श्यामा चिड़िया, कोई धोबिन चिड़िया उड़ती-उड़ती दम लेने के लिए किसी तार पर उतर आती।

परिन्दों की देखा-देखी एक बन्दर ने छोटी बज़रिया की एक मुँडेर से छलाँग लगाई और तारों पर झूल गया। दूसरी ही लम्हे वह पट्ट से ज़मीन पर आ रहा। एक तरफ से भगतजी, दूसरे तरफ से लाला मिट्ठनलाल अपनी दुकान से उठकर दौड़े। हैरत और खौफ से दम तोड़ते बन्दर को देखा। चिल्लाए, "अरे कोई पानी लाओ।"

चन्दी ने लपक-झपक कुएँ पर जा डोल डाला। पानी भर के लाई और पूरा डोल बन्दर पर उँड़ेल दिया। मगर बन्दर की आँखें बन्द और बदन ठण्डा होता चला गया।

आसपास की मुँडेरों पर जाने कहाँ-कहाँ से बन्दर उमड़ आए और सड़क के बीच मरे पड़े हुए अपने-अपने साथी को देख-देखकर शोर मचा रहे थे। फिर गली-मुहल्लों से लोग दौड़े हुए आए और मरे हुए बन्दर को हैरत से तकने लगे।

"कौन-से तार पे लटका था?"

"उस तार पे," चन्दी सबसे ऊपरवाले तार की तरफ इशारे करता।

"तो बिजली आ गई?"

“हाँ जी, आ गई। इधर आदमी ने तार को छुआ और उधर खत्म।”

दूसरे दिन फिर एक बन्दर तारों पर कूदा और धप्प-से ज़मीन पे आ रहा। फिर भगतजी और लाला मिट्ठनलाल लपककर वहाँ पहुँचे और फिर चन्दी पानी से भरा डोल लेकर दौड़ा, मगर बन्दर देखते-देखते ठण्डा हो गया।

बन्दरों में एक खलबली पड़ी। दूर-दूर की छतों से कूदते-फाँदते आए। बीच सड़क पर पड़े मुरदा

बन्दर को एक दहशत के साथ देखा और बिसात-भर शोर मचाया।

बन्दर हार-थककर चुप हो चले थे। बहुत-से वापिस होने लगे थे कि एक मोटा-ताज़ा बन्दर पण्डित हरदयाल की ऊँची-लम्बी मुँडेर पर दूर से दौड़ता हुआ आया। गुस्से-से मुँह सुर्ख, बाल बदन पर तीरों की तरह खड़े हुए। खम्बे पर छलाँग लगाई, खम्बे को इस ज़ोर-से हिलाया कि वह बोदे पेड़ की तरह हिल गया। फिर वह ऊपर चढ़ा और उसने पूरी ताकत के साथ तारों पर हमला किया। तारों पर कूदते ही लटक गया। घड़ी भर लटका रहा, फिर अधमुआ होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। भगतजी, लाला मिट्ठलाल और चन्दी – तीनों ने फिर अपना-अपना फर्ज़ अदा किया। बन्दर ने पानी पड़ने पर आँखें खोलीं। बेबसी से अपने दर्दमन्दों को देखा और हमेशा के लिए आँखें बन्द कर लीं।

बन्दर छतों-छतों कूदते-फाँदते आए। लगता था कि सब सड़क पर उतर आएँगे। मगर बस वे मुँडेरों पर मँडलाते रहे, चीखते-चिल्लाते रहे। फिर एकदम से चुप हो गए, जैसे किसी खौफ ने उन्हें आ घेरा हो। फिर मुँडेरें खाली होने लगीं।

शाम हो रही थी। मोटा बन्दर अभी तक सड़क पर पड़ा था। आसपास की किसी मुँडेर पर कहीं कोई बन्दर नहीं था। रूपनगर अपने तीन बन्दरों की भेंट

देकर बिजली के ज़माने में दाखिल हो गया और बन्दर ऐसे गायब हुए कि हफ्तों तक किसी मुँडेर, किसी छत, किसी दरख्त पर कोई बन्दर दिखाई नहीं दिया। और तो और, काले मन्दिर के बड़े पीपल पर भी, जहाँ हर मौसम, हर दिनों में बन्दर शाख-शाख उचकते-लटकते नज़र आते थे, सन्नाटा था।

चित्र प्रख्यात चित्रकार के. जी. सुब्रमण्यन की पुस्तक स्केचिस, स्क्रिबल्स एण्ड ड्रॉइंग्स से साभार

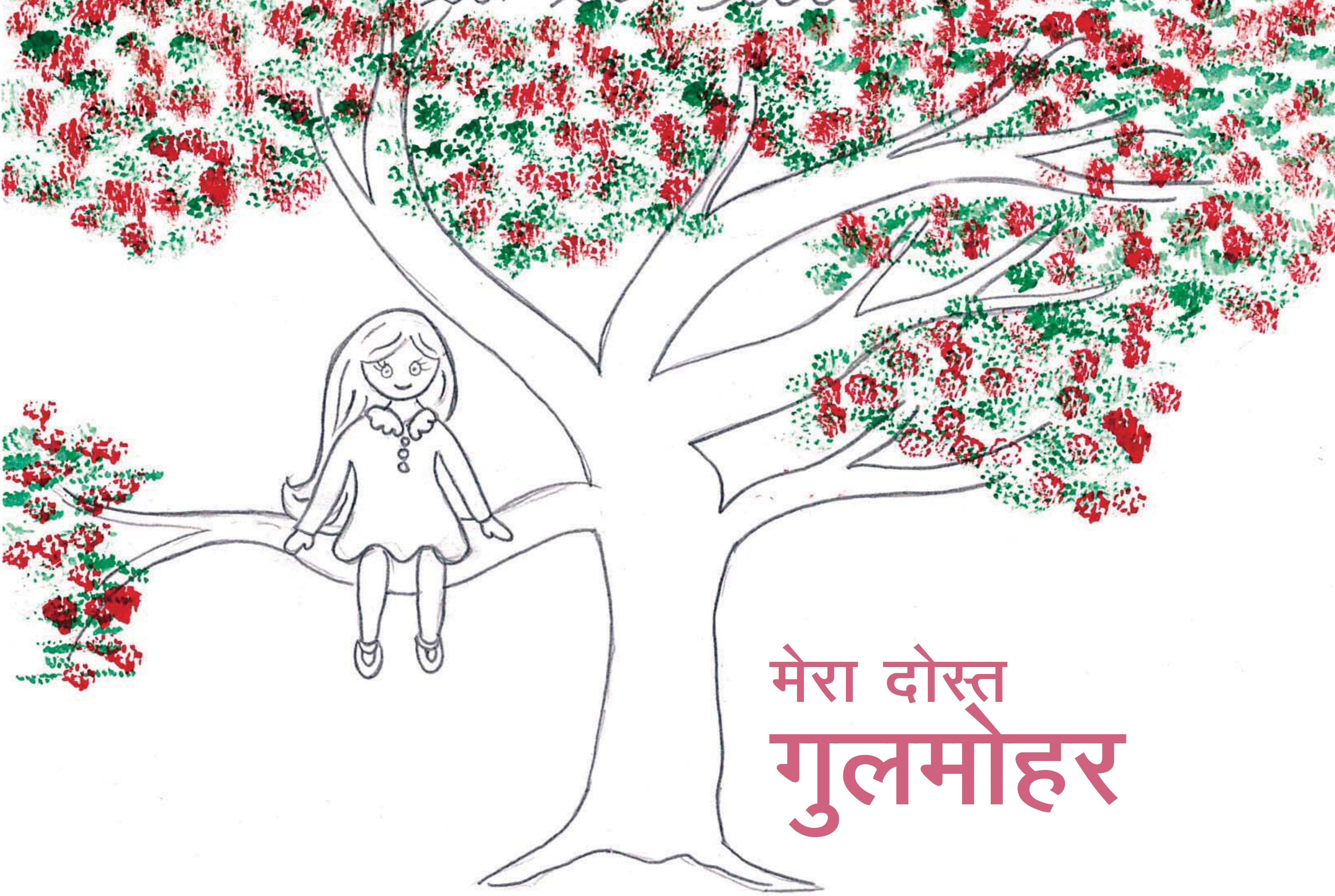

मेरा दोस्त गुलमोहर

ये कहानी चुनमुन की है। चुनमुन अपने माता-पिता के साथ गुजरात के एक छोटे से शहर में रहती है। वह चौथी में पढ़ती है। उसके पिता इंजीनियर हैं और माँ चित्रकार हैं। वह रोज़ स्कूल बस से स्कूल जाती थी। उसके स्टॉप पर एक बड़ा ही सुन्दर गुलमोहर का पेड़ था। चुनमुन रोज़ बस की प्रतीक्षा करते वक्त गुलमोहर के पेड़ पर बैठ जाती थी। यहाँ बैठना उसे इतना अच्छा लगता था कि बस आने से पहले ही वह स्टॉप पर आ जाया करती थी। वह पेड़ उसका दोस्त बन गया था। और उस पर रहनेवाले पक्षी और गिलहरियाँ भी। उसे उस पेड़ से बहुत लगाव हो गया था।

एक बार चुनमुन कुछ दिनों के लिए अपनी नानी के घर गई। जब वह वापिस आई तो यह देख हैरान रह गई कि उसका प्यारा गुलमोहर वहाँ नहीं था। किसी ने उसे काट दिया था। अब सिर्फ उसका ठूँठ रह गया था। चुनमुन इतनी उदास हो गई कि वह कई दिनों तक स्कूल नहीं गई।

माता-पिता के समझाने पर वह स्कूल जाने लगी। पर अब वह पहले की तरह बस में नहीं साइकिल में स्कूल जाती। जिस जगह उसका गुलमोहर था उसने उस रस्ते से गुज़रना भी छोड़ दिया था।

उसके माता-पिता को उसकी चिन्ता होने लगी। उसकी माँ ने उसे एक सुन्दर पेंटिंग बनाकर दी। गुलमोहर के पेड़ की। पेंटिंग देखकर चुनमुन एक पल के लिए खुश हो गई। पर अगले ही पल वह उदास हो गई।

चुनमुन के नौवें जन्मदिन पर उसके माता-पिता ने उसे गुलमोहर के नौ पौधे दिए। उन तीनों ने मिलकर अपनी गली में नौ गुलमोहर लगाए। आज वे बड़े हो गए हैं। और चुनमुन की गली गुलमोहर से महक उठी है।

कथा-चित्र : देवांशी जैन, चौथी, डीपीएस लुधियाना

‘कलकत्ता’

शंख घोष
अनुवादः संजय भारती

उस दिन शायद रविवार था। दोपहर के वक्त दो नम्बर बस के पहले तल्ले में बैठ मैं बालीगंज जा रहा था। भीड़ नहीं थी। सब खुश लग रहे थे। दोनों तरफ के जाने-पहचाने मकानों को देखता हुआ मैं धर्मतल्ला तक पहुँच गया। अचानक ख्याल आया कि आज तो मैदान में एक बड़ी सभा होनेवाली है। बस के सीधे रास्ते से जाने का कोई भरोसा नहीं। एस्प्लानेड मोड़ तक पहुँचते-पहुँचते जमघट नज़र आने लगा था। कतार-दर-कतार गाड़ियाँ अटकी हुई थीं। यात्रियों के चेहरों की खुशी धीरे-धीरे गायब होने लगी। किस रास्ते से निकलने पर भीड़ को टाला जा सकता है, इसे लेकर खुसुर-फुसुर होने लगी। कंडक्टर के कानों में भी कुछ-कुछ सलाहें पहुँचीं। वह बस इधर-उधर देख भर रहा था। अचानक ड्राइवर ने बस को सीधे पश्चिम की ओर मोड़ दिया। यात्रियों की सहमति से वह सीधे गंगा किनारे चला और वहाँ से तेज़ी-से दक्षिण की ओर मुड़ गया। थोड़ी देर बाद जब गंगा से हवा के झोंके आने लगे तो कुछ यात्री अधीर हो गए। शायद उन्हें जहाँ जाना था उससे आगे निकल आए थे। इसी बीच ड्राइवर ने बस को बाईं ओर मोड़ा और अनजाने गली-मुहाने में घुस गया। वहाँ एक और जमघट था। यात्रियों का शोर धीरे-धीरे तेज़ होने लगा। ड्राइवर पर सुझावों की बारिश होने लगी। कोई तो यह भी बताने लगा कि उसे स्टियरिंग कैसे घुमाना चाहिए। अचानक सबके चेहरों पर “सब कुछ जानते हैं” के भाव छलकने लगे। किस रास्ते से, किस तरह से जाने पर बिना समय गँवाए अपनी मंज़िल तक पहुँचा जा सकता है – यह जैसे सभी जानते थे। एक अकेले ड्राइवर को छोड़कर।

“इस तरफ क्यों घुसा दिया? अब निकालेंगे कैसे?”

“बगल का दाहिनेवाला रास्ता पकड़ना ही ठीक होता!” “कलकत्ते के रास्ते घाट पहचानते भी हो कुछ? खूब तो गाड़ी चला रहे हो”, “कहाँ से इन लोगों को जुगाड़ लाते हैं!” इस सब को सुनकर पता नहीं ड्राइवर क्या सोच रहा था, मुझे नहीं मालूम। पर लोगों के कहे पर वो एकदम उदासीन और शान्त था। ऐसा ड्राइवर मैंने कभी नहीं देखा। इतने में किसी ने कहा, “उसको अपना काम करने दीजिए न।” इसका नतीजा यह हुआ कि सब लोग मिलकर उसे लताड़ने लगे। थोड़ी ही देर बाद वह गम्भीर और उदासीन ड्राइवर बस समेत हम लोगों को एक जाने-पहचाने रास्ते पर ले आया। बस में बैठे सभी बोल उठे, “वाह, यहाँ तो पहुँच गए!”, “हाँ, अब तो बहुत जल्दी होगा।” और इस बीच पहली बार, ड्राइवर ने पीछे मुड़कर देखा। उस एक बार में मैंने देखा – उसका शान्त-सपाट चेहरा और बोलती आँखें।

देर रात को घर लौटने के बाद भी उस चेहरे और उन आँखों ने पीछा नहीं छोड़ा। मुड़कर देखने के ठीक उस पल में वो क्या सोच रहा था? उसके चेहरे के पीछे क्या छिपा था? यह कि उसके काम को बाकी सब जानते हैं एक वही नहीं जानता! लोगों की इतनी तरह-तरह की बातें उसे परेशान कर रही थीं? हमारे कलकत्ता के रास्तों पर क्या उसे यह अकसर सहना पड़ता है? कहाँ है उसका देस? कलकत्ता या कि बाहर किसी गाँव में?

मैं चटाई बिछाकर बरामदे में लेट गया। चेहरे पर हलकी रोशनी पड़ रही थी। हवा धीमे-धीमे बह रही

चित्रः हबीब अली

थी। मुझे पूर्व बंगाल के उस छोटे-से शहर का ख्याल हो आया जहाँ से मैं आया था। इस बड़े शहर को शायद मैं आज भी ठीक से पहचान नहीं पाया हूँ। पर यहाँ रहनेवाले बाकी सभी क्या सब कुछ जानते हैं? ड्राइवर का वो चेहरा, उसकी आँखें फिर से याद हो आईं। तभी छलाँग-सी लगाती कुछ पंक्तियाँ अचानक आ धमकीं। मानो मैं किसी से कह रहा हूँ, "बापजान हे कलकत्ता जा देखा, सभी सब कुछ जानें। हमीं कुछ न जानें।" अचानक बापजान क्यों? होंठों के कोने में मुस्कराहट उभर आई। थोड़ा इन्तज़ार। भीतर कुछ शब्द घुमड़े और थोड़ी ही देर में एक कविता पूरी हो गई।

(इसे पढ़कर क्या तुम्हारे मन में भी किसी कविता ने आकार लिया। अगर हाँ, तो हमें ज़रूर भेजना।)

मुन्ना बुनाईवाले

प्रियंवद

धूप रुकी तो मैंने सर उठा कर देखा।

वह खिड़की की सलाखों से चिपके हुए खड़े थे। थोड़ा झुके हुए। वह हाँफ रहे थे। मोटे ऊनी कपड़ों के नीचे भी उनका सीना ऊपर-नीचे होता दिख रहा था। उन्हें साँस लेने में मेहनत करनी पड़ रही थी। उनकी मोटी झुर्रियाँ काँप रही थीं।

"कहिए!" मैंने पूछा

"मैं मुन्ना बुनाईवाला हूँ। आपको बेंत की कुर्सियाँ बुनवानी थीं!"

"हाँ...हाँ... अन्दर आइए।"

मैंने दरवाज़ा खोला फिर एक ओर हट गया। वह कुर्सी पर बैठ गए। मैं भी बैठ गया।

मेरे पास पुरानी तरह की बनी पुश्तैनी बेंत की दस कुर्सियाँ थीं। उनकी बेंत अब टूट चुकी थी। चिकने प्लास्टिक के तार की बुनाई करनेवाले बहुत थे, पर वे खुरदुरे, पेड़, धारदार बेंत की बुनाई करना नहीं जानते थे। यह एक खास हुनर था। ऐसी कुर्सियाँ अब नहीं बनती थीं, इसलिए ऐसी बुनाई करनेवाले भी खत्म हो चुके थे। बहुत ढूँढने पर पूछने पर पता चला कि शहर में सिर्फ एक ही आदमी यह काम कर सकता है, मुन्ना बुनाईवाले। मैंने ढूँढकर उन तक खबर पहुँचा दी थी। इसीलिए वह आए थे।

"आप ही कुर्सी बुनते हैं?" मैंने पूछा

"जी।" उन्होंने दायाँ हाथ उठाकर उँगलियों को माथे से छुआया। अब मैंने उन्हें ध्यान से देखा। उमर सत्तर के आसपास थी। बेहद कमज़ोर शरीर। सर्दियों में शहर के ठेलों पर बिकनेवाले सस्ते और पुराने विदेशी ऊनी कपड़े बिकते थे। उन्हीं में से खरीदा हुआ ओवरकोट पहने थे। गले में मोटा मफलर लटका था। पैरों पर ऊनी पैजामा था। कुर्सी पर बैठने के बाद भी वह भारी साँस ले रहे थे। उन्हें बोलने में भी दिक्कत होती थी। कुछ शब्द बोलकर रुकते थोड़ा झुकते फिर सीधे हो कर बोलते।

“दस कुर्सियाँ हैं।” मैंने कहा, “आप देखना चाहेंगे?”
“नहीं.. पहले आप मेरा काम देख लीजिए। आपको तसल्ली हो जाए तब बताइएगा।”

“कहाँ?”

“ग्वालों के टोलेवाले चर्च में। मैं वहीं, उन लोगों की इबादत के लिए बैठनेवाली लम्बी कुर्सियाँ बुन रहा हूँ। कुछ दूसरी भी। कई महीनों का काम है। वह अल्लाह का घर है इसलिए मैं भी इत्मीनान और सुकून से वहाँ काम करता हूँ।”

मेरी दिलचस्पी बढ़ने लगी।

“आप कब से यह काम कर रहे हैं?”

“पैंसठ साल हो गए। मेरे उस्ताद हुनरमन्द थे। खुदा ने उनको जन्नत ही बख्शी होगी। पाँच साल का था तब उन्होंने अपने साथ ले लिया था। तब से यही कर रहा हूँ।” वह कुछ देर रुके, साँस ली फिर बोले, “आज शहर के सारे बड़े और पुराने घरों में मेरे हाथ की बुनी कुर्सियाँ हैं।” उन्होंने ओवरकोट के बटन खोलकर अन्दर की गहरी जेब में हाथ डाला। एक छोटा-सा प्लास्टिक का लिफाफा निकाला। लिफाफे से कुछ कागज़ निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिए। मैंने देखा। शहर के मशहूर लोगों के दस्तखतवाले कागज़ थे। उनके हुनर और व्यवहार की तारीफ की थी। उनकी बुनाई की मज़बूती और कारीगरी की भी। मैंने कागज़ उन्हें वापस कर दिए।

“शहर में कोई दूसरा यह काम नहीं जानता। फिर...?” मैंने पूछा।

“फिर क्या?” उन्होंने लिफाफे में कागज़ रखे, लिफाफा वापस जेब में रखते हुए पूछा।

“आपके बाद इन कुर्सियों को कौन बुनेगा?”

उन्होंने ऊपर की तरफ हाथ उठाया।

“मैं चाहता था मेरा लड़का यह काम करे। वह करता तो यह हुनर भी बचा रहता। पर उसका मन नहीं लगा।” वह कुछ मायूस हो गए।

“मैं कल चर्च आता हूँ।” मैंने कहा।

“वहाँ जो भी मिले मेरा नाम बता दीजिएगा।” वह उठ गए। थोड़ा खाँसे। दाएँ हाथ की उँगलियाँ माथे से छुआईं। कँधे आगे की तरफ झुकाए और बाहर निकल गए।

चर्च के बड़े लॉन पर सर्दियों की सुनहरी धूप पसरी थी। पूरे चर्च में गहरी शान्ति थी। चर्च के शिखर, मरियम की मूर्ति और घण्टे के ऊपर चमकदार नीला आसमान था। इस नीलेपन में परिन्दे तैर रहे थे।

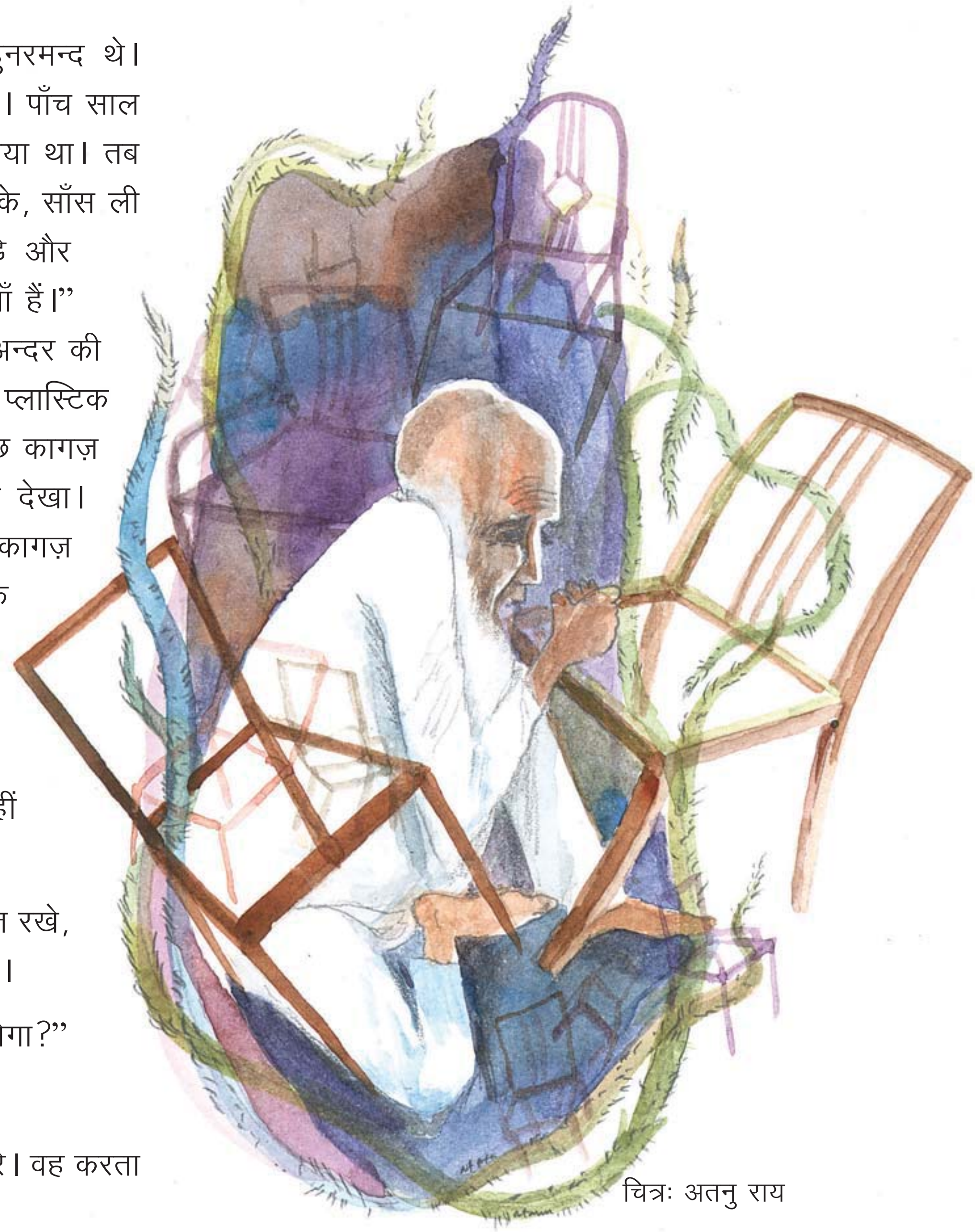

चित्रः अतनु राय

मुझे अन्दर आते हुए देख कर एक आदमी पास आया।

“मुन्ना बुनाईवाले से मिलना है।” मैंने कहा।

उसने दूर एक बड़े हॉल की ओर इशारा किया। रंगीन फूलों की क्यारियों के बीच पतली पगडण्डियाँ थीं। उन पर पाँव रखता हुआ मैं हॉल तक आया। अन्दर देखा मैंने। एक कोने में खिड़कियों से आती धूप गिर रही थी। उस पर जालियों की परछाइयों के स्लेटी चकत्ते बने थे। उनके बीच लगभग न दिखते हुए मुन्ना प्यू (इबादतगारों के बैठनेवाली लम्बी बेंच) पर झुके थे। मैं धीरे-से उनके पास गया। उन्हें मेरा आना पता नहीं लगा।

“आदाब।” मैंने कहा।

उन्होंने सर उठाकर देखा, मुस्कराए।

“ये खाने पूरे कर लूँ ज़रा...” वह फिर झुक गए। मैं खड़ा होकर देखने लगा।

छोटे-छोटे षट्कोण बनाते हुए घेरों के अन्दर असंख्य खानों के बीच उनकी उँगलियाँ पतले बेंत को तेज़ी-से अन्दर, बाहर और लकड़ी में बने छेदों में पिरो रही थीं। मधुमक्खी के छत्ते जैसी बुनावट थी। कुछ देर बाद ही वह उठ गए।

“आइए।” वह मुझे हॉल में थोड़ा आगे ले गए। हॉल के दूसरे कोने पर कई पुरानी कुर्सियाँ पड़ी थीं। उनकी बुनाई टूटी थी। उन्होंने एक ओर बनी नई कुर्सी की ओर इशारा किया।

“देख लीजिए... यही डिज़ाइन, यही मज़बूती, यही बेंत होगा। इतने ही तार चलेंगे। बैठकर भी देख लीजिए। मज़बूती, लचक। इंशाअल्लाह एक बार बुनवाने के बाद खाकसार की ज़रूरत कभी नहीं पड़ेगी।”

मैं मुस्काया, “यहाँ से कब फुरसत पाएँगे?”

“यहाँ से फुरसत कहाँ? काम तो चलता ही रहेगा। इसके बाद दूसरे चर्च भी हैं। आपका काम करने के लिए एक हफ्ते यहाँ काम रोक दूँगा। पर सिर्फ एक हफ्ते ही। चाय पिएँगे?”

मैंने चारों तरफ देखा। न चाय थी न कोई बर्तन, न कोई चाय लानेवाला।

“आज नहीं ... पहले आप मेरे घर चाय पिएँ... उसके बाद।”

“सामान सब आप मँगवा लेंगे?” उन्होंने पूछा।

“नहीं... आप ही सब इन्तज़ाम करेंगे।”

“ठीक है... मैं कल सामान के साथ हाज़िर हो जाऊँगा।” उन्होंने दाएँ हाथ की उँगलियाँ माथे से छुआईं। “अब आए हैं तो मसीह के हुज़ूर में भी हाज़िरी लगा दीजिए। बहुत खूबसूरत बुत है। वह आदमी आपको अन्दर ले जाएगा।”

मैंने भी हथेली माथे से छुआई। हॉल से बाहर आ गया। कुछ कदम आने के बाद मैंने घूमकर देखा। धूप और चकत्तों के बीच वह फिर प्यू पर झुक गए थे।

सात दिन में काम खत्म हो गया। वह दिन में दो बार चाय पीते थे। तभी कुछ देर काम रोकते थे। इसके अलावा चुपचाप, सर झुकाए, उँगलियों से पतला बेंत कुर्सियों के छेद और षट्कोणों में फँसाते रहते थे। कभी मैं भी बैठ जाता तो बात भी करते चलते। असम में बेंत के जंगल होते हैं। ये जंगल सिर्फ रात में ही काटे जाते हैं। सैकड़ों लोग मिलकर एक रात में पूरा जंगल काटते हैं। हो हो करते, शोर मचाते, आग जलाते हुए। बताते वो खुद भी दो बार जंगल कटाई में शामिल हुए हैं। ऐसी ही बातें...।

सात दिन में कुर्सियाँ पूरी हो गईं।

“कभी आपकी ज़रूरत पड़ी तो?” मैंने पूछा।

उन्होंने जेब से एक छोटी डायरी निकाली। एक मोबाइल नम्बर पर उँगली रखकर डायरी मेरी तरफ बढ़ा दी, “मेरे बेटे का है।” मैंने नम्बर मोबाइल में डाल लिया। नाम में लिख लिया “मुन्ना बुनाईवाले”। डायरी के साथ मैंने उन्हें रुपए भी दिए। उन्होंने उसी तरह सलाम किया और चले गए!

(शेष भाग पेज 27 पर)

वो हमारे क्या लगते हैं

बहुत दुख होता है जब फसल खराब हो जाती है, जब किसान उसी वजह से फाँसी लगा लेते हैं। पर लोग कहते हैं कि अपन को क्या! आज एक ने लगाई है फाँसी, कल दो लगाएँगे। हम कहाँ तक रोकेंगे? क्या हम हर गाँव में जाएँगे, कहें आप फाँसी मत लगाना? वो हमारे लगते क्या हैं? चाचा, मामा, दादा?

हाँ, वो हमारे तो कुछ नहीं लगते। पर मेरे लगते हैं कुछ। एक किसान जो हमें खाना देता है वह फाँसी लगा ले तो कोई बड़ी बात ही होगी। उसकी फसल खराब हो गई है। हम जब किचन गार्डनिंग करते हैं और उसमें कुछ खराब हो जाता है तो हमें दुख होता है, रोने लगते हैं। पर उस किसान की तो फसल खराब हुई है। अगर एक किसान फाँसी लगाता है जो घर में अकेला कमा कर लाता हो तो घर कैसे चलेगा? हमारे पास दाल चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा जैसी चीज़ें कैसे आएँगी?

अब बताओ, वह अब भी तुम्हारे कुछ नहीं लगते?

बीहू
11 साल, भोपाल

चित्रः विभूति पाण्डे

चित्रः नीलेश गहलोत

पुत्री का खत पिता के नाम

14 मार्च 2016

मेरे प्यारे पापा,

गर्मी की दो महीने की छुट्टियाँ फिर से आ गई हैं। इस बार मैं खूब मस्ती करूँगी, क्योंकि मामा के बच्चे घर आ रहे हैं। ये गर्मियाँ खूब याद रहेंगी – सुमन, साहिल और मैं – तीनों मिलकर खूब खेलेंगे। वैसे भी आपके पास तो समय ही नहीं रहता। सुबह जल्दी काम पर चले जाते हो और रात में भी घर देर से आते हो। मम्मी भी काम पर चली जाती हैं। पवन पूरा दिन अपने दोस्तों के साथ गलियों को नापता रहता है, बची मैं जो घर में अकेली रह जाती हूँ। शाम को आते ही मम्मी घर के कामों में लग जाती हैं। वह भी मेरे साथ नहीं बैठ पातीं, न ही खेलती हैं। क्या करूँ पापा, दादी भी पूरे दिन खाट पर सोती रहती हैं। कभी गली की अन्य अम्माओं के साथ बीड़ी का धुआँ हवा में उड़ाती हैं तो कभी बातें करती रहती हैं। मैं पूरे दिन अकेली रहती हूँ। रोती हूँ तो कोई चुप भी नहीं करवाता। मेरे लिए किसी के पास समय ही नहीं होता। इसीलिए मैं छुट्टियों का इन्तज़ार करती हूँ क्योंकि तब मामा के बच्चे आते हैं। पर अब यह समझ नहीं आ रहा है कि सुमन और साहिल के साथ क्या करूँगी?

पापा, मैं आपसे एक बात कहूँ! आप नाराज़ मत होना। मैं आपसे कुछ नया नहीं माँगना चाहती। मुझे वो पुराना बक्सा चाहिए जिसे आपने दीवाली में टाँड पर रख दिया था। उसमें मेरे खूब सारे पुराने खिलौने हैं। उसमें एक भालू रखा है जो आखरी बार दादाजी ने मुझे दिया था।

जब हम तीनों आपकी बाइक पर शुक्रबाज़ार गए थे। मुझे यह भालू पसन्द आया और मैं ज़िद्द करने लगी, पर आप बार-बार कह रहे थे कि यह नकली है, जल्दी टूट जाएगा। जब मैं नहीं मानी तो दादाजी ने आपको डाँटा और कहा, "दिलवा दे, लड़की रो-रो कर आधी हो गई है।" तब आपने झट-से दिलवा दिया। कितना प्यारा भालू है, एकदम सॉफ्ट! मम्मी ने भी मुझे एक जोड़ी सैंडिल दिए थे, जो बहुत सुन्दर थे। गुलाबी रंग के, आज भी वैसे के वैसे ही हैं पर अब मेरे लिए छोटे हो गए हैं। एक कार जो लाल रंग की है जिसको चलाते हुए मैं एक बार गली में गिर गई थी। मेरे पैर में चोट भी लग गई थी तब दादी मुझे डाँटते हुए घर ले आई थीं। आप तभी काम से आकर बैठे ही थे। पानी का गिलास आपके हाथ में था। आपने मुझे रोते देखकर पानी का गिलास छोड़ा और मुझे गोदी में उठा लिया। पापा वह बात मैं अभी तक नहीं भूली और वह खिलौना भी, जो आपने मुझे चौथी क्लास में अच्छे नम्बर लाने पर दिया था। उस दिन मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। मैं सो रही थी। जब आप काम से घर आए और मम्मी से पूछा कि मेरी दमु कहाँ है? मैं आपकी आवाज़ सुन उठ बैठी। आपने कहा, "देख मैं क्या लाया हूँ तेरे लिए – ये गुड़िया! इसकी कितनी बड़ी-बड़ी आँखें हैं!" कहकर आपने मुझे सुलाया था और कहा कि आज से यह तेरी सहेली है। तू इसके साथ खेलना और इसी को पकड़कर सोना। मैंने जल्दी से आपको पकड़ लिया था।

इस बक्से में एक मेरा मनपसन्द हाथी है। उसकी सूँड टूट गई है। वह हाथी मामा ने मेरे जन्मदिन पर दिया था। आपको पता है, सब मेरे हाथी को देखकर कह रहे थे कि अब तो रोशनी हाथी की सवारी करेगी और स्कूल भी इसी से जाया करेगी। मैं भी झूठमूठ उसके ऊपर बैठकर उसको चलाती थी। यह देखकर सब खूब हँसते। एक दिन जब मम्मी सारे खिलौने इकट्ठे करके रख रही थीं तो हाथी उनके हाथ से गिर गया और उसकी सूँड टूट गई। मैं रोई भी थी पर जब मम्मी ने कहा नया ला दूँगी तो चुप हो गई। उस बक्से में और भी बहुत सारे खिलौने हैं – एक गुड्डा है, दस छोटे-छोटे फौजी हैं जिन्हें हम जन्माष्टमी में लगाते थे। एक छोटा-सा धनुष, गदा, बर्तनों का सेट जो मेले से खरीदा था। मिट्टी का घड़ा जिस पर मैंने पेंट किया था। एक छोटा तकिया, गुड़िया के कपड़े जो दादी ने पुरानी साड़ी से बनाए थे।

पापा मुझे पता है कि मैं अब बड़ी हो गई हूँ। मुझे अब और खिलौनों की क्या ज़रूरत है! दादी कह रही थीं कि अब तो इन पुराने खिलौनों से तेरे भाई – पवन और सूरज खेलेंगे। अब तू उनके साथ खेलना और उनका ध्यान रखना। मैं यह भी जानती हूँ कि वो दोनों मेरे साथ नहीं खेलेंगे। मेरी छुट्टियाँ तो यूँ ही खत्म हो जाएँगी। मेरे प्यारे पापा बक्सा उतार दो ना! मैं आपसे यह नहीं कहूँगी कि आप मुझे घुमाने ले चलो या मेरे साथ खेलो। बस मेरे बक्से से पुराने खिलौने निकालकर मुझे दे दो!

आपकी बेटी
रोशनी

__रोशनी आर्या__, पाँचवीं, नगर निगम प्राथमिक कन्या विद्यालय, नम्बर 3, सेक्टर 5, अम्बेडकर नगर, नई दिल्ली-62। रोशनी को लिखने में मज़ा आता है और वह पिछले दो सालों से अंकुर के 'लर्निंग कलेक्टिव' की सदस्य हैं।

पलानिया

प्रभात

दस साल की दीरा रेल में चाबियों के छल्ले बेचती है। आठ साल का भाई पलानिया भीख माँगता है।

पलानिया नींद में भीख माँगता है। वह अपनी नन्ही हथेली लोगों के आगे कर देता है। बहन उसका कँधा हिलाकर आगे बढ़ाती है। वह आगे बढ़ जाता है। वह इतना थक जाता है कि गैलरी में सो जाता है। लोग उसे लाँघकर आते-जाते रहते हैं। इससे उसकी नींद में कोई खलल नहीं पड़ता।

पूरा डिब्बा दो-तीन बार घूम लेने के बाद दीरा भाई के पास आकर बैठ जाती है। वह अपने बाल ठीक करती है। रूखे सुनहरे बालों को खोलकर झाड़ती है। समेटकर रबर से बाँधती है। बोगी में बैठे लोग उसे घूरते हैं।

स्टेशन पर गाड़ी रुकती है। दीरा भाई को झँझोड़कर जगाती है। बोगी बदलनी है। उनींदा भाई दीरा के पीछे चलता है। दूसरी बोगी में भीख माँगता है। दीरा चाबियों के रंग-बिरंगे छल्ले बेचती है। हरी-लाल मिर्चवाले छल्ले, रोटी के रंग के छल्ले, हनुमानजी वाले छल्ले, नामों के अक्षरोंवाले छल्ले।

टीटी और दो पुलिसवाले आते हैं।

“टिकिट।” टीटी कहता है।

दीरा टीटी के चहरे की तरफ देखती है।

“हमारे साथ आ जाओ।” एक पुलिसवाला कहता है।

दीरा पुलिसवालों के चहरों को देखती है।

“तुम्हें गाड़ी में अवैध रूप से सामान बेचने के कारण

पकड़ा जा रहा है।” दूसरा पुलिसवाला कहता है।

दीरा भाई को जगाती है, “पलानिया! पलानिया।”

उनींदा भाई बहन के बगल में खड़ा हो जाता है।

“गाँव जा। पुलिस ने पकड़ लिया, ऐसा कहना।” दीरा उसे समझाती है।

पलानिया की नींद उड़ जाती है। आँखें चौड़ी हो जाती हैं।

दीरा को पुलिस अपने साथ ले जाती है।

पलानिया बस स्टैण्ड की ओर दौड़ लगाता है। अँधेरा होने को है। उसे गाँव जानेवाली आखिरी बस मिलती है। बस में उसे खिड़कीवाली सीट मिल जाती है। वह खिड़की से बाहर गेहूँ के खेत, बगुले, बिजूके,

चित्रः मयूख घोष

मोर, बबूल, बादल कुछ नहीं देखता। उसे नींद आ जाती है।

कंडक्टर उसे झँझोड़कर जगाता है, “कहाँ जाएगा? कौन है तेरे साथ में?”

“कोई साथ नहीं है।” पलानिया कहता है।

कहाँ जाएगा?

“पलानिया।” पलानिया के गाँव का नाम भी पलानिया है।

“बीस रुपए निकाल।”

पलानिया पूरी जेब खाली करके कंडक्टर को देता है।

बीस रुपए पूरे हो जाते हैं। वह फिर सो जाता है।

सर्दी की काली रात के आठ बजे हैं। बस की ठण्डी खिड़की से सटकर सोए पलानिया को चाँद देख रहा है। पलानिया चाँद को नहीं देख रहा है। बस अँधेरे में सड़क पर दौड़ रही है।

“पलानिया! पलानिया! पलानिया!” कंडक्टर आवाज़ लगाता है।

कई मज़दूर, मज़दूरिने थैले, बिस्तर, गठरी उतारते हुए उतरते हैं।

एक मज़दूर पलानिया को जगाता है, “तुझे पलानिया उतरना है ना?”

वह सोता रहता है। लोग उसे झँझोड़कर खड़ा कर देते हैं। वह खड़ा हो जाता है।

कंडक्टर, ड्राईवर और लोग उसके उतरने का इन्तज़ार करते हैं।

वह नींद में सीट का पाइप पकड़कर खड़ा रहता है।

एक गोरा चिट्टा सफेद कुर्तेवाला आदमी, जिसने कानों में सोने की लौंग पहनी हुई है, पलानिया को धकेलता है।

पलानिया लड़खड़ाते हुए बस से नीचे अँधेरे में गिर जाता है। बस आगे बढ़ जाती है। चक मक

क्या कीट भी बोलते-सुनते हैं?

डॉ. भरत पुरे

फूलों पर मण्डराते भँवरों की गुँजन, कान के पास मच्छरों का एक सुर में गुनगुनाना या झींगुरों का घण्टों बेरोक-टोक एक तीखी-सी आवाज़ निकालते रहना – इन्हें हम सबने देखा-सुना है। ऐसे में यह पूछना अजीब लग सकता कि क्या कीट भी बोलते-सुनते हैं? असल में जब हम बोलने की बात करते हैं तो हमारा इशारा गले से निकली आवाज़ से होता है और सुनने को हम कान से जोड़कर ही देख पाते हैं। पर कीटों के पास न तो हमारे जैसा गला होता है और न ही कान। फिर भी वो बोलते हैं, सुनते हैं। इसमें उनके शरीर के कुछ खास अंग मदद करते हैं। कुछ कीट तो वो आवाज़ें भी सुन पाते हैं जिन्हें मनुष्य भी नहीं सुन पाता। वैसे, किसी भी कीट-प्रजाति का काम बिना आवाज़ के चल ही नहीं सकता है। आपसी संवाद के लिए, शिकारियों से बचने या उन्हें डराने के लिए आवाज़ ही तो काम आती है। या फिर प्रजनन के लिए मादा से प्रेम का इज़हार भी नर आवाज़ के बिना कैसे करे! और तो और प्रेम करते हुए भी ये आवाज़ निकालते हैं। बहरहाल हर वक्त की आवाज़ अलग-अलग होती है। कुछ कीटों में केवल नर ही आवाज़ निकाल पाते हैं और मादाएँ शान्त रहती हैं। चलो, देखते हैं कि मच्छर, झींगुर, टिड्डे, सिकाडा, तितलियाँ, पतंगे (मॉथ) आदि सुर-ताल में गाते कैसे हैं और सुनते कैसे हैं। और यह भी कि आवाज़ निकालना और सुनना उनके लिए कैसे उपयोगी होता है।

कीटों में ध्वनि कई तरीके से पैदा होती है। जैसे –

1. पंखों के फड़फड़ाने से आवाज़ पैदा होना

यूँ तो सभी उड़नेवाले कीटों के पंख उड़ते समय फड़फड़ाते ही हैं। ये जिस तेज़ी से फड़फड़ते हैं उससे ध्वनि तरंगें पैदा होती हैं। जैसे उड़ते समय मधुमक्खी के पंख एक सेकण्ड में तकरीबन 250 बार और मच्छर के 350 बार फड़फड़ाते हैं। पंखों की गति कीटों की उम्र, लिंग और आसपास के तापमान पर निर्भर करती है। कड़े शरीरवाले कीटों से पैदा हुई ध्वनि की तीव्रता नर्म शरीरवालों की तुलना में ज़्यादा होती है।

टिड्डी दल जब एक साथ उड़ते हैं तब उनके पंख एक सेकण्ड में 6400 बार तक फड़फड़ाते हैं। इससे

बहुत शोर पैदा होता है। वैसे इस आवाज़ से कीट को फायदा क्या होता है इसके बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। शायद इस तरह ये डर पैदा करते हों!

2. शरीर को रगड़ने या फटकने से ध्वनि निकलना

कुछ भृंग (बीटल) सिर झुकाकर अपने पेट के उभरे हिस्सों को अपने बिल की सतह पर एक सेकण्ड में सात से आठ बार ठकठकाते हैं। इसका एक अच्छा उदहारण दीमक की कुछ प्रजातियों में मिलता है। इनकी कॉलोनी के सैनिक अपनी बीच की टाँगों के बल पर शरीर को उठा लेते हैं। और सिर को ऊपर-नीचे हिलाते हुए उसे बिल के फर्श पर या छत से टकराते हैं। इससे आवाज़ निकलती है। यह आवाज़ आधे-आधे सेकण्ड के बाद दो-तीन बार निकाली जाती है। इससे कॉलोनी के बाकी सदस्यों तक सन्देश पहुँच जाता है।

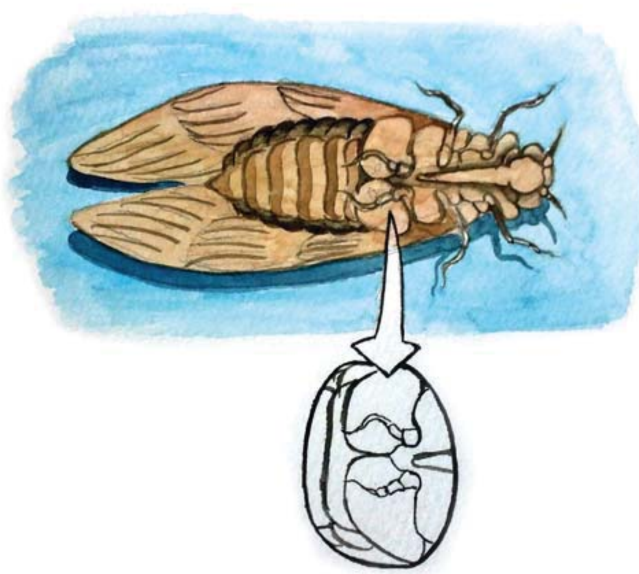

3. घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होना

कुछ कीट जैसे झींगुर, टिड्डे आदि शरीर के किसी खुरदुरे हिस्से को किसी दूसरे हिस्से से रगड़कर आवाज़ पैदा करते हैं। जैसे वॉयलिन बजाते वक्त होता है। ये अंग खुरचनी (स्क्रेपर) और रेती (फाइल) जैसे होते हैं। इनकी रेती एक झिल्ली से जुड़ी होती है। खुरचनी से रेती पर हरकत होते ही झिल्ली में कम्पन होता है और ध्वनि पैदा होती है।

झींगुरों (हाउस क्रिकेट) में पहली जोड़ी के पंख थोड़े मोटे होते हैं। इनके एक पंख के अन्दर की सतह पर एक दाँतेदार रेती होती है। और दूसरे पंख में इसी जगह पर उभरी हुई खुरचनी होती है। दाहिना पंख बाएँ को ऊपर से ढँकता है। इससे दाएँ पंख की रेती, बाएँ पंख की खुरचनी से घर्षण कर पाती है। पंखों को शरीर से लगभग 15 से 40 के कोण पर ऊपर उठाकर बार-बार खोला-बन्द किया जाता है। इससे पंखों में कम्पन होता है और आवाज़ निकलती है। पंख जब बन्द होते हैं तभी आवाज़ निकलती है। यह ध्वनि 300 मीटर दूर तक सुनी जा सकती है।

टिड्डों की कुछ प्रजातियों में अन्तिम जोड़ी की जाँघ के भीतरी तरफ खूँटियों की शक्ल में लम्बी उभरी रचना होती है जो पहली जोड़ी के मोटे पंखों की अन्दरूनी सतह की नसों से रगड़ी जाती है। इससे पंखों में कम्पन्न होता है और आवाज़ पैदा होती है।

सिकाडा

4. झिल्ली के कम्पन से आवाज़ निकालना

जंगल से कभी गुज़रो तो किर्र किर्र की एक आवाज़ लगातार आपके साथ बनी रहती है। यह है सिकाडा की पुकार। नर सिकाडा घण्टों तक लगातार आवाज़ निकालते रहते हैं। मादाएँ शान्त रहती हैं। एक छोटी झिल्ली जैसे अंग से ध्वनि पैदा होती है। यह झिल्ली पेट के पहले हिस्से के ऊपर और पासवाले भाग से निकलती है। झिल्लियाँ एक मोटी बॉर्डर से घिरी होती हैं और पीछे की सतह पर पसलीनुमा पेशीय रचनाओं पर टिकी होती हैं। यह पूरा हिस्सा टिम्बाल कहलाता है। पेशियों के सिकुड़ने से झिल्ली अन्दर की ओर खिंचती है जिससे उसमें कम्पन होता है और आवाज़ आती है। पेशियों के वापस अपनी जगह पर आने पर फिर से ध्वनि पैदा होती है। इनकी ध्वनि की आवृत्ति 390 से 4500 प्रति सेकण्ड होती है।

हेलियोथिस नामक एक पतंगे में तो छाती के आखरी हिस्से के दोनों तरफ कई महीन टिम्बाल होते हैं। इनसे अल्ट्रासोनिक ध्वनि पैदा होती है। इससे शिकारी-चमगादड़ दिशा भ्रमित हो सकते हैं।

एक दूसरे प्रकार के पतंगे, हॉक मॉथ में तो आहार नाल की ग्रसनी से हवा को पम्प की तरह अन्दर खींचा जाता है। यह उसकी शुण्ड में इकट्ठा हो जाती है। इसी हवा को वापिस बाहर फूँकने पर ग्रसनी के ऊपरवाली रचना में कम्पन होता है। इससे सीटी जैसी आवाज़ निकलती है।

सभी चित्रः हबीब अली

सुननेवाले अंग

विभिन्न कीट जिस तरह अलग-अलग तरीकों से आवाज़ निकाल पाते हैं उसी तरह उन्हें सुनने के लिए भी उनमें कुछ जुगाड़ होता है। कीटों में खास तरह की कोशिकाएँ होती हैं जो ध्वनि के प्रति संवेदनशील होती हैं। ये शरीर के कुछ भागों में समूहों में होती हैं। इन्हीं से ये सुनते हैं। झिंगुरों में ये अंग पहली जोड़ी की टाँगों में और टिड्डों और सिकाडा में पेट के पहले हिस्से में होते हैं। कुछ कीट जैसे तितलियों आदि में ये अंग छाती के आखरी हिस्से में होते हैं। यानी इनके कान इनकी टाँगों, छाती, पेट आदि पर होते हैं।

जहाँ इंसान केवल 1500 साइकिल प्रति सेकण्ड की आवृति की ध्वनि को सुन पाते हैं वहीं कुछ टिड्डे 20000, झींगुर 8000 और सिकाडा 15000 साइकिल प्रति सेकण्ड तक की आवृत्तिवाली ध्वनि को सुनने की क्षमता रखते हैं। कुछ पतंगे 40 से 80 हज़ार साइकिल प्रति सेकण्ड की आवाज़ को भी सुन पाते हैं। इसी तरह कान होने के बावजूद हम सेकण्ड के दसवें भाग से कम अन्तराल से आनेवाली ध्वनि पहचान नहीं पाते हैं वहीं कीट एक सेकण्ड के सौवें हिस्से के अन्तराल से आनेवाली ध्वनि तरंगों को भी पहचान लेते हैं। यानी हमारी तरह कान न होते हुए भी कीटों के सुनने की क्षमता हमसे कई गुना ज़्यादा होती है।

हॉक मॉथ

(पेज 18 का शेष भाग)

मुन्ना बुनाईवाले

कई महीने बीत गए। इतने कि अगले साल की सर्दियाँ शुरू होने के दिन फिर आ गए। अँधेरा जल्दी होने लगा था। धूप की तेज़ी कम हो गई थी। धुँआँ ज़्यादा ऊपर नहीं जाता था। सूखी खालें चटकने लगी थीं। इन्हीं दिनों दरवाज़े पर दस्तक हुई। मैंने दरवाज़ा खोला। कोई अजनबी था। उसने झुककर सलाम किया।

"मैं मुन्ना बुनाईवाले का बेटा हूँ।" वह बोला।

मैं एक ओर हट गया। वह अन्दर आकर बैठ गया।

"कैसे हैं मुन्ना भाई?" मैंने बैठते हुए पूछा।

कुछ देर चुप रहने के बाद वह बुदबुदाया।

"उनका इन्तकाल हो गया।"

मैं अवाक बैठा रहा। वह भी चुप रहा। देर बाद उसने सन्नाटा तोड़ा।

"इन्तकाल के कुछ दिन पहले उन्होंने मुझे बुलाया था। चर्च का काम अधूरा पड़ा था। मुझसे बोले कि वह अल्लाह का घर है। उसका काम अधूरा रहा तो ऊपर क्या मुँह दिखाऊँगा? और उनको भी जिनकी कुर्सियाँ मैंने बुनी हैं। कोई ज़रूरत पड़ी तो मेरे बाद कोई वह बुनाई नहीं कर पाएगा।" उसका गला रुन्ध गया था। मुझे लगा वह रो देगा। अपने को सम्भालकर वह फिर बोला, "उन्होंने कहा मैंने तुम्हें यह काम सिखाया है। तुम्हारा मन नहीं था मैं कुछ नहीं बोला। पर अब तुम्हारा फर्ज़ है। मेरे उस्ताद ने अपने कागज़ मुझे दिए थे। उन कागज़ों में सब कुछ लिखा है। अब तुम उन्हें सम्भालो। मेरे बाद चर्च का काम पूरा करना। उन सबका भी, जिनकी कुर्सियाँ मैंने बुनी हैं। तुम नहीं करोगे तो इस हुनर का भी क्या होगा? खत्म हो जाएगा। किसी हुनर का खत्म होना इन्सानों की बहुत बड़ी हार है। मैंने उन्हें सब ज़बानें दीं। मैंने नौकरी छोड़ दी। अब चर्च में काम कर रहा हूँ। उन सब के पास जा रहा हूँ। जिनकी कुर्सियाँ उन्होंने बुनी थीं। इसी सिलसिले में आपके पास आया हूँ।" मैं चुप बैठा था। कुछ देर बाद वह उठ गया।

"मेरा फोन नम्बर ले लीजिए। कभी कोई ज़रूरत हो तो याद कर लीजिएगा।" मैं भी उठ गया। मैंने मोबाइल पर देखा। मुन्ना बुनाईवाले का नम्बर पड़ा था। वह वही नम्बर बोल रहा था।

"यह नम्बर मुन्ना भाई के नाम पर पड़ा है। तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा अब यही नाम है।" उसने दाएँ हाथ की उँगलियाँ माथे से छुआईं और चला गया। देर तक मैं उसे गली में जाते देखता रहा। कँधे आगे झुकाए धीरे-धीरे जाता हुआ वह मुन्ना बुनाईवाला लग रहा था।

प्यारे भाई रामसहाय

(पेज 9 का शेष भाग)

होलकर सर उसे क्लासरूम से बाहर लाए, उससे उसकी सारी पर्चियाँ छीनीं, रिपोर्ट लिखने के लिए डायरी निकाली.... कि तभी जैसे उन्हें कुछ याद आ गया।

"तुम तो वही हो न जो उस दिन खून देने के लिए सबसे पहले आगे आए थे?"

राधेश्याम ने सिर को छाती में घुसाए हुए "हाँ" में सिर हिलाया।

होलकर सर दो मिनट उसे देखते रहे, फिर अपनी डायरी बन्द करके बगल में दबाई और धीरे-से बोले, "जाओ! आइन्दा मत करना। जितना आता है लिखो!" और राधेश्याम की पीठ पर हाथ रखकर, मुड़कर चले गए।

जाते-जाते उन्होंने राधेश्याम की पर्चियों की गोली बनाई और बाउण्ड्री वॉल से बाहर फेंक दी।

लेकिन राधेश्याम इस कदर शर्मिंदगी में डूबा हुआ था कि उससे उत्तरपुस्तिका में एक शब्द भी नहीं लिखा गया।

उस साल राधेश्याम फेल हो गया।

और उसने स्कूल छोड़ दिया।

इस तरह हमारा एक बहुत प्यारा साथी हमेशा के लिए हम से बिछुड़ गया।

और हाथी क्या सोचते होंगे?

चकमक के पिछले अंक में हमने तुम्हारी मुलाकात सिंथिया से कराई थी जो पिछले चालीस सालों से केन्या में अफ्रीकी हाथियों के साथ रह रही हैं। मशहूर लेखक कार्ल सफीना सिंथिया और उनके मित्रों के साथ कुछ समय रहे। और फिर अपनी किताब *बिऑण्ड वड्‌र्स - वॉट एनिमल्स थिंक एण्ड फील* में तफसील से अपने इस समय को लिखा। इसी बेमिसाल किताब का एक और छोटा-सा अंश पढ़ो। यह किताब मौका लगे तो ज़रूर पढ़ना। तुम अपने स्कूल की लाइब्रेरी में इसे मँगा सकते हो।

1 अभी-अभी लम्बी घास के मैदान से हाथियों का एक झुण्ड तालाब की ओर गया है। सिंथिया के साथ लम्बे समय से रह रही विकी कहती हैं कि हाथी परिवार में बड़े घुलमिलकर रहते हैं। जी भर खाकर अब ये पानी पीने गए हैं। हो सकता है वो वापस आ जाएँ। एक परिवार साथ ही खाता-पीता-नहाता है। पर जब बहुत दूर जाना हो तो सब इकट्‌ठा हो जाते हैं। जब मुखिया का इशारा होगा तभी चलते हैं। चाहे उसके लिए कितनी ही इन्तज़ार करना पड़े। मेकेलेले 11 साल का है। पाँच साल पहले

उसकी पिछली दाईं टाँग में चोट लग गई थी। बहुत दर्द सहा इसने। अब टाँग जुड़ तो गई है पर पहले जैसी नहीं रही है। वो बहुत धीरे चल पाता है। पर उसका परिवार हमेशा उसके साथ रहता है। उसका इन्तज़ार करता है। कभी उसे पीछे नहीं छोड़ता।
ये एक-दूसरे का बहुत ख्याल रखते हैं, रिश्तों में बेहद ईमानदार हैं, बहुत स्नेहिल, खूब मदद करते हैं एक-दूसरे की। ये वो सब करते हैं जिन्हें पाने की हमें अपनी ज़िन्दगी में चाह रहती है! वो बच्चों का, एक-दूसरे का इतना ख्याल रखते हैं कि क्या कहूँ। कोई अपनी सूँड उठा नहीं पा रहा होता है तो दूसरा उसे खाना खिलाता है, कभी-कभी तो किसी मर चुके हाथी को भी खाना खिलाने की कोशिश करते हैं। इस उम्मीद में कि वो जी जाए। वो हम इंसानों जैसे बिलकुल नहीं। वो रिश्तों को बहुत अहमियत देते हैं। अपने शरीर, आवाज़, गन्ध जाने कितने तरीकों से रिश्तों में गरमाहट बनाए रखते हैं। और यह मज़बूती बनी रहे, साथ बना रहे इसकी पूरी कोशिश करते हैं।
केवल एक-दूसरे ही नहीं असहाय और घायल लोगों के प्रति भी वो हमदर्दी रखते हैं। सिंथिया याद करती हैं कि एम्बोसिल की एक लॉजवालों ने टूरिस्टों को आकर्षित करने का एक तरीका सोचा। उन्होंने उनके सामने किस्म-किस्म के खाने रख दिए। थोड़ी ही देर में हाथियों की छान-बीन करने की फितरत रंग लाने लगी। इससे लॉज के पेड़, रसोई वगैरह को कुछ नुकसान भी पहुँचा। लोग डर गए। और चीखते हुए उनकी तरफ डण्डे, झाड़ू... जो हाथ लगा फेंकने लगे। ज़ाहिर है इससे हाथी भी भड़क गए। ऐसे में किसी को भी कुचल डालना कोई अनहोनी न होती। पर ऐसा हुआ नहीं। तानिया नाम की एक हाथिनी ने थोड़ी देर के लिए आपा खो दिया और वो एक महिला के पीछे भागी। इससे डरकर वो लॉज की ओर भागी पर बीच लॉन में गिर गई। जैसे ही वो गिरी उसका पीछा करती तानिया ने खुद को उससे कुछ कदम पहले रोक दिया। जैसे तेज़ चलती गाड़ी पर ब्रेक लगाओ तो ज़मीन पर टायर के गहरे निशान बन जाते हैं उसी तरह उसने इतनी ताकत लगाई कि ज़मीन पर उसके पाँव के निशान खुद गए। फिर वो अपने परिवार के पास लौट आई। मैं सोचती हूँ उसने खुद को क्यों रोका होगा!
मुझे लगता है कि जानवर शायद ही समझ पाते होंगे

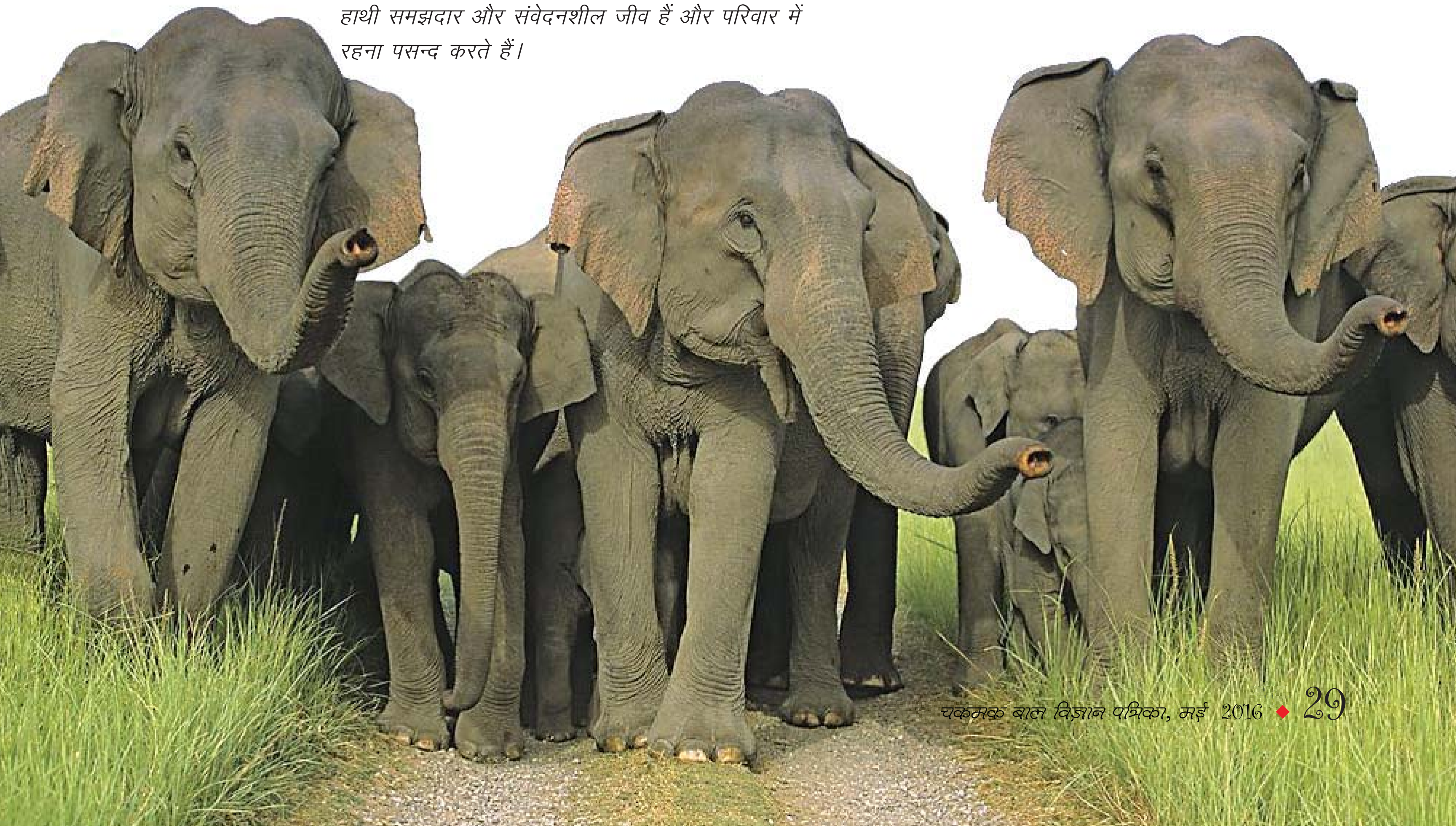
हाथी समझदार और संवेदनशील जीव हैं और परिवार में रहना पसन्द करते हैं।

कि इंसान क्यों कभी-कभी उनसे इतना प्यार जताते हैं। वैसे ही हम इंसानों के लिए भी यह समझना मुश्किल है कि क्यों हाथी इतना धीरज रखते हैं। शायद हाथी लड़ाई-झगड़े से परहेज़ रखना चाहते हैं। और अपनी ताकत या अपना वर्चस्व दिखाने के लिए उनके पास ज़्यादा बेहतर तरीके हैं।

2 हाथियों की आपसी समझ बहुत ज़बरदस्त होती है। यह "चलो चलें..." जैसी किसी बात को भी समझ जाते हैं और आवाज़ के उतार-चढ़ाव से एक दूसरे के जज़्बातों को भी जान जाते हैं। जैसे अगर कोई हमें रास्ते में मिले और कहें - "और" - तो उसके कहने के अन्दाज़ से हम समझ जाते हैं कि वो कहना क्या चाह रहा है। प्यार से पूछ रहा है या धमका रहा है। हाथी भी आवाज़ की इतनी बारीक पहचान कर पाते हैं। दो हाथी जब पास आते हैं तो एक धीमी, नर्म, छोटी-सी आवाज़ करते हैं। किसी से मिलने का यह उनका अपना तरीका है। और जब हम प्यार से उनका नाम लेते हैं तो भी वो वैसी ही आवाज़ करते हैं।

हमारे वाक्य शब्दों से बनते हैं और हाथियों के चिंघाड़ने और कुलबुलाने की आवाज़ से। सभी जानवर इस मामले में बड़े किफायती होते हैं। पूँछ को ज़ोर-ज़ोर से हिलाते हुए दरवाज़े को सूँघता कुत्ता जो बात कह जाता है उसे कहने में हमें दो-तीन वाक्य तो खर्चने ही पड़ते। है ना।

3 कटीटो सिंथिया के साथ लगभग 14 साल से रह रही हैं। वो एम्बोसिल के हर हाथी को पहचानती हैं। उनके नाम से, उनकी आदतों से। समूह में हाथियों के व्यवहार को कटीटो ने करीब से देखा है। इको की बात करते हुए उनकी आवाज़ एकदम नम हो गई। वे बोलीं - मैं वहीं थी जब इको की मौत हुई। 5 मई 2009 की बात है। दिन के ढाई बजे थे।

एक सुबह मैंने इको को दो बच्चियों के साथ देखा - एक 9 साल की एक 4 की। अकाल का समय था। इको 64 साल की थी। वो घिसट-घिसटकर चल रही थी। वो मुश्किल से एक पैर उठाती फिर दूसरा। अगली सुबह साढे छह बजे फोन आया। मैं भागती हुई वहाँ पहुँची। इको ज़मीन पर लेटी थी। टाँगें उठाने की कोशिश करती। कभी आँख खोलती। कभी उठने की कोशिश करती। उसकी बेटियाँ वहीं थीं। मैं उसके सिर पर हाथ फेरती वहीं बैठी रही। सारी रात, अगली सुबह। दोपहर तक। रात को लकड़बग्घों से बचाने के लिए उसके पास किसी का रहना ज़रूरी था।

जब हाथी पास आते हैं तो एक धीमी, नर्म आवाज़ करते हैं... शायद यह उनके प्यार की आवाज़ हो...

उसकी बेटी इनिड वहीं खड़ी शोक मनाती रही। दोपहर बाद इको ने धीमे-से टाँगें फैलाईं। आँख झपकाई। मुझे देखा। और फिर आँख मूँद ली। मन बहुत दुखी हो गया।

एनिड का दुख देखा नहीं जा रहा था। एक महीने तक वो यूँ ही उदास बनी रही। उसका वज़न भी बहुत घट गया था।

इको की बहन इला जो कुछ समय के लिए तन्ज़ानिया गई थी वापस आई तो उसे बहन की मौत की खबर लगी। वो ऐसा दिखाने लगी जैसे झुण्ड की मुखिया अब वही है। पर मुखिया बनने के लिए तो सब को साथ लेकर चलना होता है, सबका ख्याल रखना होता है। झुण्ड पर आपका यकीन होता है...वो यकीन इला के लिए नहीं बना। आखिर में समूह ने एनिड को ही मुखिया के बतौर स्वीकारा।

एक दिन सिंथिया ने बताया कि पिछले दस सालों में एक लाख अफ्रीकी हाथियों का शिकार हो चका है। केन्या में 2007 में जहाँ 50 हाथी मारे जाते थे वहाँ अब लगभग 30 से 40 हज़ार हाथी हर साल अपने दाँतों की वजह से मारे गए हैं। यानी हर 15 मिनट में एक हाथी। मेरे अन्दर एक सिरहन-सी दौड़ गई। इतने प्यारे-स्नेहिल जानवर को कोई मार कैसे सकता है!

और वो भी उनके दाँतों के कारण! सुना है लोगों को हाथी दाँत के ज़ेवर बहुत पसन्द आते हैं।

2014 में केन्या में एक हाथी था - सताओ। वो उस वक्त का सबसे बड़ा ज़िन्दा हाथी था। पर 200 पाउण्ड के दाँतों का लालच उसकी मौत का कारण बना। एक अध्ययन बताता है कि अपना लीडर खोने के बाद बचे हाथियों में तनाव इतना बढ़ जाता है कि अगले 15 सालों तक उनके बहुत कम बच्चे पैदा हो पाते हैं।

हम क्यों भूल जाते हैं हाथी-दाँत को हाथी से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

इस ढेर में दाँतों की हर जोड़ी कभी किसी हाथी का एक हिस्सा थी

सभी चित्र साभार इंटरनेट

हाथियों के साथ पिछले 30 सालों से काम कर रहे रिचर्ड रुगीरो कहते हैं कि जाने कैसे हाथियों को अन्देशा हो गया है कि उनके साथ कुछ बहुत बुरा हो रहा है। यह बेहद संवेदनशील जीव जान गया है कि उन्हें चुन-चुनकर मारा जा रहा है। बहुत पुरानी चीज़ें और बहुत सारी चीज़ें याद रखनेवाला और पैनी समझवाले इस जीव ने सीख लिया है कि - सारे इंसान एक जैसे नहीं होते और कुछ इंसान खतरनाक होते हैं।

मेरा सिर शर्म और दुख से झुक गया।

एम्बोसिल में आज मेरा आखरी दिन है। मैंने खिड़की से बाहर देखा। वहाँ कोई चार सौ हाथी कीचड़-पानी में लोटने, मस्ताने के बाद घर लौटते दिखे। धूल उड़ाते। ख्याल आया कि मैं इन्हें फिर कभी नहीं देख पाऊँगा। वो अपने परिवार में मस्त रहेंगे। उन्हें हाथियों का जीवन जीने के लिए हमारी ज़रूरत नहीं है। पता नहीं उन्हें याद रहेगा कि नहीं कि कोई था जो थोड़े समय उनके साथ रहा था। पर इतना ज़रूर है कि वो हमेशा मेरी स्मृतियों में दूर रह रहे एक परिवार की तरह रहेंगे।

प्रस्तुतिः शशि सबलोक

झटपट और नटखट
बिचौली खास के लड़के

रमेश उपाध्याय

झटपट शुरू से ही झटपट थे, नटखट शुरू से ही नटखट। अब तो झटपट पाँचवीं में और नटखट तीसरी में पढ़ रहे हैं। पर यह किस्सा तब का है, जब झटपट तीसरी में थे और नटखट ने स्कूल जाना शुरू ही किया था।

स्कूल में गणितवाले गुरुजी पहाड़े याद न रखनेवाले लड़कों की तो खूब पिटाई करते थे, पर खुद किसी लड़के का नाम याद नहीं रखते थे। किसी को "ए लड़के" कहते, किसी को "ओ लड़के"। लेकिन विचित्र बात थी कि कौन लड़का किस गाँव का है, यह उन्हें याद रहता था। इसलिए किसी को "ए श्योपुरवाले लड़के" कहकर पुकारते, तो किसी को "ओ कासिमगंजवाले लड़के" कहकर।

झटपट तो गणितवाले गुरुजी से "ए बिचौलीवाले लड़के" सुनने के आदी हो चुके थे, पर नटखट को "ए बिचौलीवाले लड़के" कहकर पुकारा जाना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा, "गुरुजी, हमारा नाम नट खट है।"

"नटखट हो या खटपट, हो तो बिचौली के ही!" गुरुजी ने लापरवाही से कहा।

"गुरुजी, हम बिचौली खास के हैं।" नटखट ने "खास" पर ज़ोर देकर कहा।

लेकिन गुरुजी तब भी नहीं समझे। झुँझलाकर बोले, "खास हो या आम, हो तो बिचौली के ही!"

नटखट को बहुत बुरा लगा। ये कैसे गुरुजी हैं, जो बात को समझते ही नहीं?

बात यह थी कि झटपट और नटखट के गाँव का नाम बिचौली खास था। और "खास" होने का कारण यह था कि उस इलाके में बिचौली नाम के तीन गाँव थे – बिचौली कलाँ, बिचौली खुर्द और बिचौली खास। लोग इन गाँवों को बड़ी बिचौली, छोटी बिचौली और खास बिचौली भी कहते थे।

अब बिचौली शब्द का अर्थ झटपट और नटखट तो क्या, उनके माता-पिता, चाची-चाचा, ताई-ताऊ और दादी-दादा भी नहीं बता सकते थे। लेकिन यह किस्सा हर कोई सुना सकता था कि पहले बिचौली नाम का एक ही गाँव था, जो तीन भाइयों ने बसाया था। अच्छा-खासा बड़ा गाँव था। लेकिन भाइयों में झगड़ा हो गया, तो दूसरे भाई ने दूर जाकर दूसरा गाँव बसा लिया, तीसरे भाई ने और भी दूर जाकर तीसरा गाँव बसा लिया। एक के तीन गाँव हो गए, पर नाम तीनों का एक ही रहा – बिचौली। मगर लोगों को इससे परेशानी होने लगी। बिचौली की बात चले, तो पूछना पड़े, "कौन-सा बिचौली?" जवाब में बिचौली के पीछे तीन पुछल्ले जोड़ दिए गए – कलाँ, खुर्द और खास।

बिचौली कलाँ बड़ा गाँव था। उसके पास बहुत सारी ज़मीन थी। वहाँ के लोग खेती करते थे और गेहूँ, चावल, चना, मटर, सरसों आदि उपजाते थे। बिचौली खुर्द छोटा गाँव था। उसके पास ज़मीन कम थी। इसलिए वहाँ के लोग खेती कम और बागवानी अधिक करते थे। वे अपने बागों में आम, अनार, अमरूद, बेर, बेल, कटहल, बड़हल आदि उपजाते थे। बिचौली खास इसलिए खास था कि उसके पास ज़मीन तो पहले दोनों गाँवों से कम थी, पर वहाँ के लोगों की आमदनी उनसे ज़्यादा थी। उस गाँव में एक बड़ी पोखर थी, जिसमें सारे साल खूब पानी रहता था। वहाँ कुछ खेत और बाग भी थे, पर वहाँ

के लोगों का मुख्य काम था पोखर में और उसके आसपास की ज़मीन में रोज़ाना खाई जानेवाली चीज़ें पैदा करना। पोखर में मछलियाँ पाली जाती थीं, सिंघाड़े पैदा किए जाते थे और कमल उगाए जाते थे, जिनसे फूल ही नहीं, खाने के लिए कमल-ककड़ी और ताल मखाने भी मिलते थे। पोखर के आसपास की ज़मीन में भी खाने की चीज़ें पैदा की जाती थीं, जैसे गाजर, मूली, प्याज़, चुकन्दर, खीरा, ककड़ी, तरबूज़, खरबूज़।

पहले दो गाँवों के लोग अपनी उपज बेचने के लिए फसलों के समय ही शहर जाते थे, जबकि तीसरे गाँव के लोगों को अपनी उपज बेचने के लिए रोज़ाना शहर जाना पड़ता था। रोज़ाना की कमाई से वे जल्दी ही धनी हो गए और शहर में ही रहने लगे। गाँव में वे अपना काम नौकरों से कराने लगे। इस तरह शहर में रह रहे मालिकों और गाँव में उनके लिए काम कर रहे नौकरोंवाला तीसरा बिचौली एक खास गाँव बन गया और बिचौली खास कहलाने लगा।

शहर में रहनेवाले धनी मालिकों के लिए काम करनेवाले जो गरीब लोग बिचौली खास में रहते थे, वे अपने बच्चों को पढ़ाते नहीं थे, बचपन से ही काम में लगा देते थे। झटपट और नटखट के माता-पिता भी गरीब थे, पर वे उन्हें पढ़ाना चाहते थे। लेकिन गाँव में कोई स्कूल नहीं था। स्कूल था दूर एक दूसरे गाँव में, जो बड़गाँव कहलाता था। झटपट बड़े थे, सो स्कूल में उनका दाखिला पहले कराया गया। फिर जब नटखट स्कूल जाने लायक हुए, तो उनका भी दाखिला बड़गाँव के स्कूल में करा दिया गया और दोनों भाई साथ-साथ पढ़ने जाने लगे।

बड़गाँव का नाम सुनकर लगता था कि वहाँ बड़ के बहुत-से पेड़ होंगे या वहाँ लोग नहीं, बड़ के पेड़ ही रहते होंगे। लेकिन वहाँ आम, नीम, पीपल, गूलर, बेल, शीशम, बबूल आदि के पेड़ तो बहुत थे, बड़ का एक भी पेड़ नहीं था।

दरअसल बड़गाँव बड़ा गाँव था। वहाँ कई शहरों से आनेवाली और कई शहरों को जानेवाली बड़ी सड़क के साथ-साथ रेल की छोटी पटरी भी थी। सड़क पर बड़गाँव का बस अड्डा था और पटरी पर बड़गाँव का छोटा-सा रेलवे स्टेशन। बस अड्डे पर सारी बसें रुकती थीं, पर स्टेशन पर कोई-कोई गाड़ी ही कुछ मिनट के लिए रुकती थी। बड़गाँव था तो गाँव ही, शहर नहीं था, पर वहाँ बाज़ार था, बैंक था, डाकघर था और एक स्कूल भी था।

आठवीं तक के उस स्कूल में लड़के-लड़कियाँ दोनों पढ़ते थे, पर लड़कियाँ बड़गाँव की ही होती थीं। लड़के बड़गाँव के साथ-साथ आसपास के उन गाँवों से भी आते थे, जिनमें स्कूल नहीं थे। स्कूल में पढ़ानेवाले अध्यापक ज़्यादातर बड़गाँव के ही थे, पर दो-तीन अपनी साइकिलों पर बाहर से भी आया करते थे।

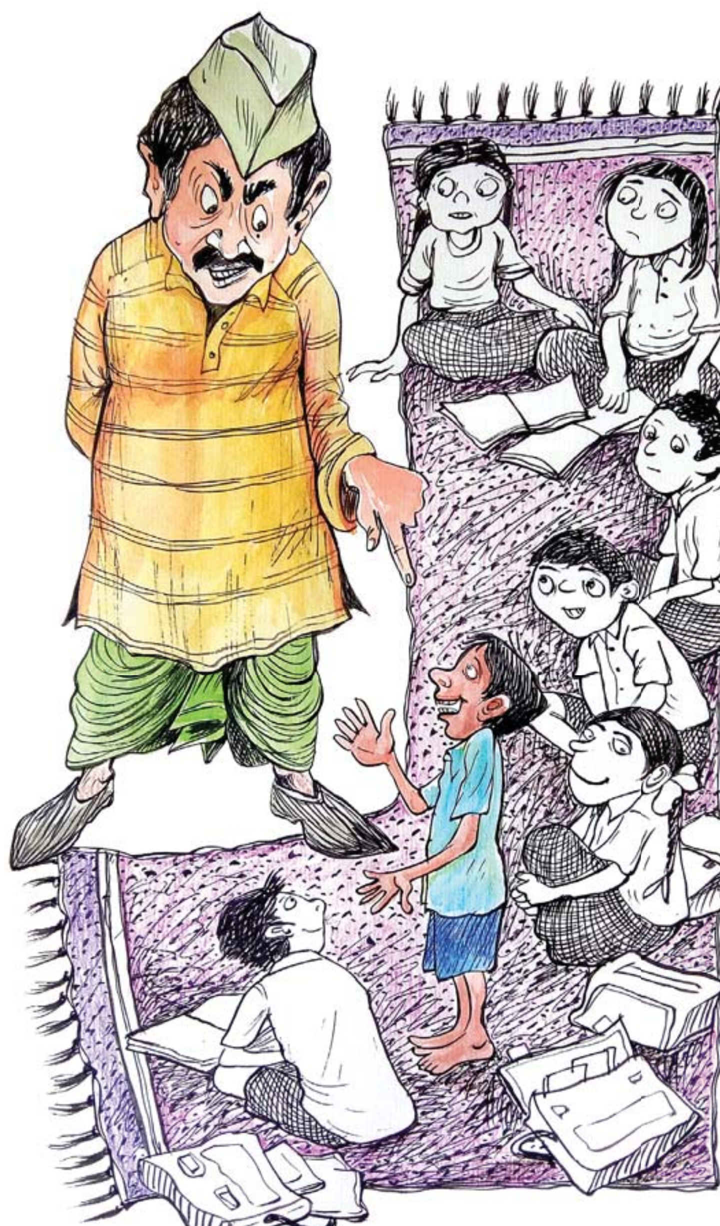

गणितवाले गुरुजी बड़गाँव के थे और स्कूल के हेडमास्टर भी थे। स्कूल में उनका बड़ा रौब था। उनसे सब डरते थे। इसलिए जब वे लड़कों को उनके नाम से न बुलाकर उनके गाँव के नाम से बुलाते, तो कोई चूँ नहीं करता था। झटपट ने भी अभी तक चूँ नहीं की थी, पर उस दिन नटखट ने उनसे गणितवाले गुरुजी की शिकायत की, तो छोटे भाई को "बिचौलीवाले लड़के" कहकर पुकारा जाना उन्हें भी बुरा लगा और उन्होंने चूँ करने की सोची। स्कूल से लौटते समय साथ चलते नटखट से उस दिन उन्होंने कहा, "छोटे, हमारे पास गणितवाले गुरुजी को सबक सिखाने का एक आइडिया है।"

"क्या?" नटखट ने पूछा।

झटपट ने आइडिया बताया, तो नटखट खुश होकर बोले, "बस, बड़े! यह काम कल ही हो जाना चाहिए।"

"तो ठीक है, कल ही लो।"

अगले दिन झटपट और नटखट आधा घण्टा पहले स्कूल पहुँच गए। झटपट नटखट की पहली कक्षा वाले कमरे में गए और उन्होंने श्यामपट पर जल्दी-जल्दी लिखाः

गणित का प्रश्न

मान लो तीन गाँव हैं। एक गाँव का नाम है पुरवा बड़गाँव, दूसरे का पुरवा मझगाँव और तीसरे का पुरवा छोटगाँव। अगर तुमसे कहा जाए कि पुरवा चले जाओ, तो तुम कौन-से गाँव जाओगे?

झटपट यह लिखने के बाद झटपट अपनी तीसरी कक्षा में चले गए और नटखट अपनी पहली कक्षा में बैठ गए। पहला पीरियड गणित का ही था। गणितवाले गुरुजी आए तो श्यामपट पर लिखा प्रश्न देखकर चौंक गए। उन्होंने ध्यान से प्रश्न पढ़ा। जवाब सोचने के लिए टोपी में उँगली घुसाकर सिर खुजाया। फिर भी जवाब नहीं सूझा, तो मुड़कर बोले, "किसने लिखा है यह?"

कोई नहीं बोला, तो उन्हें याद आ गया कि कल इस कक्षा में बिचौलीवाला एक लड़का उनसे अपने और अपने गाँव के नाम को लेकर बहस कर रहा था। उन्हें याद आया कि वह लड़का बिचौली खास का नटखट था।

"नटखट, यह प्रश्न तुमने लिखा है?" उन्होंने नटखट का नाम लेकर पूछा।

नटखट को खुशी हुई कि तीर ठीक निशाने पर लगा है। लेकिन खड़े होकर गम्भीर मुद्रा में बोले, "हमें लिखना कहाँ आता है, गुरुजी! हमें तो अभी पूरी बारहखड़ी भी नहीं आती।"

"अच्छा, ठीक है। बैठ जाओ।" गुरुजी ने कहा और श्यामपट पर लिखा प्रश्न मिटा दिया।

इसके बाद फिर कभी उन्होंने झटपट और नटखट को "ए बिचौलीवाले लड़के" कहकर नहीं पुकारा।

चित्रः प्रशान्त सोनी

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

चित्रः अतनु राय

सेठ नाजी मलैया ने अपने लिए एक आलीशान मकान बनवाया। मकान क्या था, महल था। करोड़ों की लागत से बना था। उसमें सेठ मलैया को सिर्फ रहना ही नहीं था, अपनी रईसी का डंका भी पीटना था।

वह अपने सभी रिश्तेदारों, दोस्तों, परिचितों और ग्राहकों को बुलाकर अपना मकान दिखा चुके थे। जब लोग उनके मकान की तारीफ करते, सेठ मलैया को बहुत सुख मिलता।

लेकिन जब मकान देखने के लिए कोई बाकी नहीं रहा, तो सेठ मलैया उदास हो गए। उनका उस मकान से जी उचटने लगा।

अचानक एक दिन उन्हें याद आया कि उन्होंने अपना मकान अपने बचपन के दोस्त हाजी मुर्गावाला को तो दिखाया ही नहीं, जो रोशनपुरा चौराहे पर आमलेट का ठेला लगाता है!

तो एक दिन वह गए और ढूँढ-ढाँढकर हाजी मुर्गावाला को पकड़ लाए अपना महल जैसा मकान दिखाने के लिए।

"ये देखो! ये मेरा ड्राइंगरूम, ये देखो, ये मेरा बेडरूम, ये देखो ये मेरी किचन वगैरह।"

मकान देखते-देखते दोनों पीछे की तरफ पहुँचे तो हाजी ने देखा कि तीन स्वीमिंग पूल बने हुए हैं।

हाजी ने पूछा, "ये क्या हैं?"

नाजी सेठ ने कहा, "स्वीमिंग पूल। तैरने और नहाने के लिए।"

"लेकिन तीन-तीन क्यों?" हाजी ने पूछा।

नाजी सेठ समझाते हुए बोले, "ये पहला गरम पानी का। जब जी चाहा गरम पानी से नहाएँ तो गरम पानी से नहा लिए।"

"...... और वह दूसरा ठण्डे पानी का। जब जी चाहा कि ठण्डे पानी से नहाएँ तो ठण्डे पानी से नहा लिए।"

"और ये तीसरा? ये किसलिए?" हाजी ने पूछा

"तीसरा खाली। जब जी चाहा नहीं नहाएँ तो नहीं नहाए।"

नाजी ने जवाब दिया।

बोली रंगोली

रख ढेले पर ढेला और हिसाब लगा
खोल नया खाता और नई किताब लगा

कवि गुलज़ार की इस पंक्ति पर तुम्हारे तीन सौ चित्र मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा चार चित्र (चित्र 1, 2, 3, 4) यहाँ पेश हैं। इन्हें भेजने वाले चित्रकारों को उपहार में चकमक डायरी अथवा किताबें भेजी जा रही हैं।
जून की कविता सुनो -

काँटा चुभा था क्या पाँव में
पानी भरा था क्या गाँव में
दूर से आया इब्ने बतूता
पाँव में क्यों न पहना जूता

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 15 जून तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। पता है - चकमक, एकलव्य, ई-1 0, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16 (फोन - 09425010115)
चाहो तो ईमेल कर दो chakmak@eklavya.in

▲ *कोमल, छठीं, डीपीएस, पटना* — चित्र 4

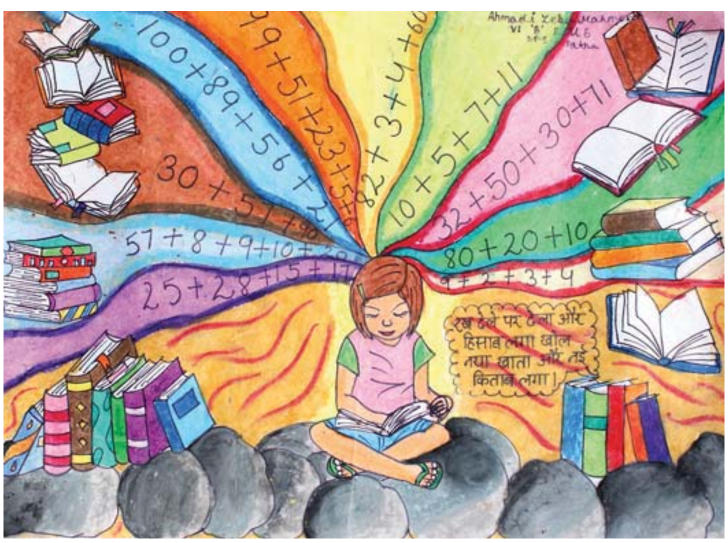

▲ *अहमदी ज़ेबा महमूद, छठी, डीपीएस, पटना* — चित्र 2

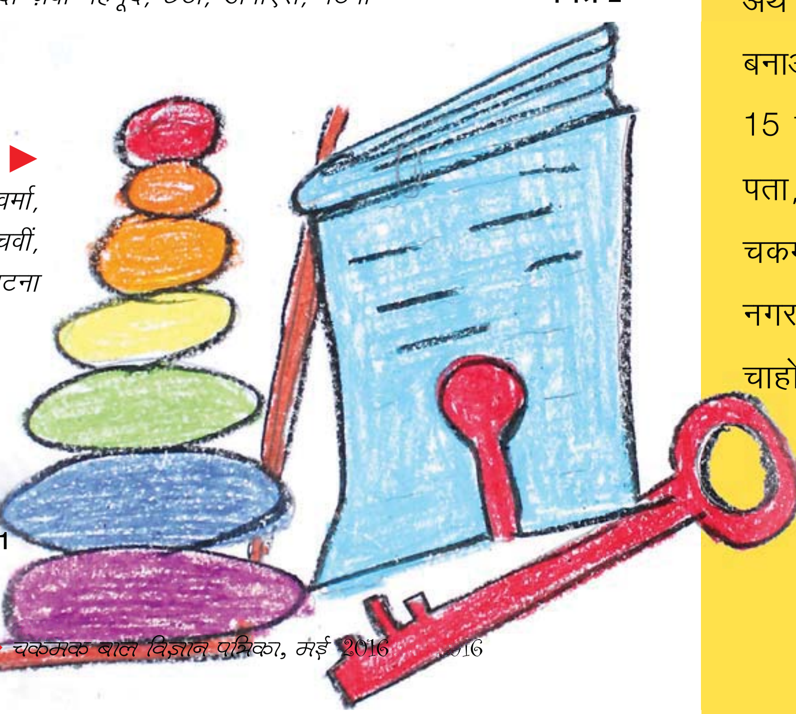

▶ *सन्वी वर्मा, पाँचवीं, डीपीएस, पटना*

चित्र 1

▲ देवांश, छठी, डीपीएस पटना

▲ जिया बिन्द्रा, पाँचवीं, डीपीएस, लुधियाना

◀ अभिनय शर्मा, आठवीं, मदेशिलापुर, परिवर्तन, सीवान

▲ मो. फराज़, चौथी, डीपीएस पटना

▲ पूजा कुमारी, सातवीं, बाबू की भटकन, सीवान

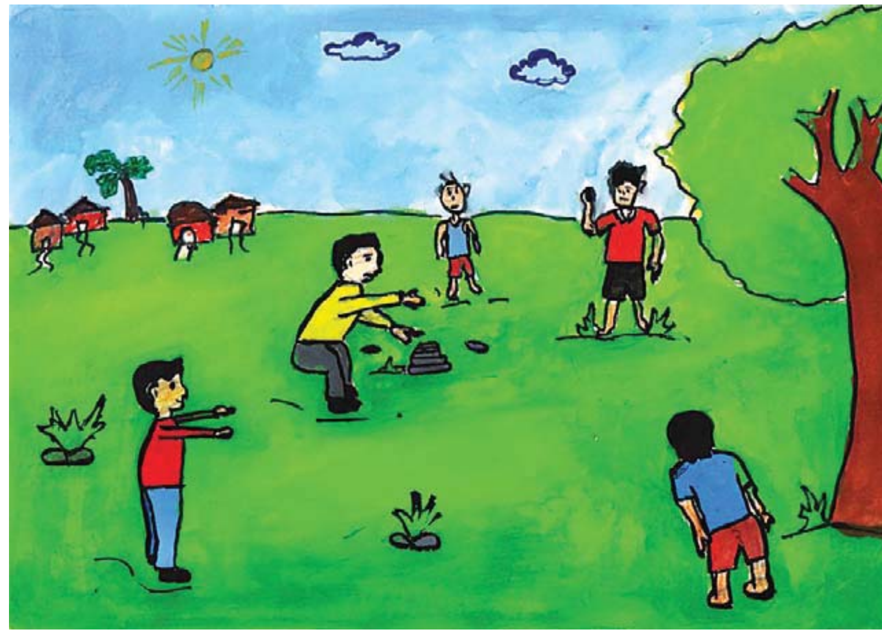

▲ अभिषेक कुमार, छठी,
किलकारी बालभवन, पटना

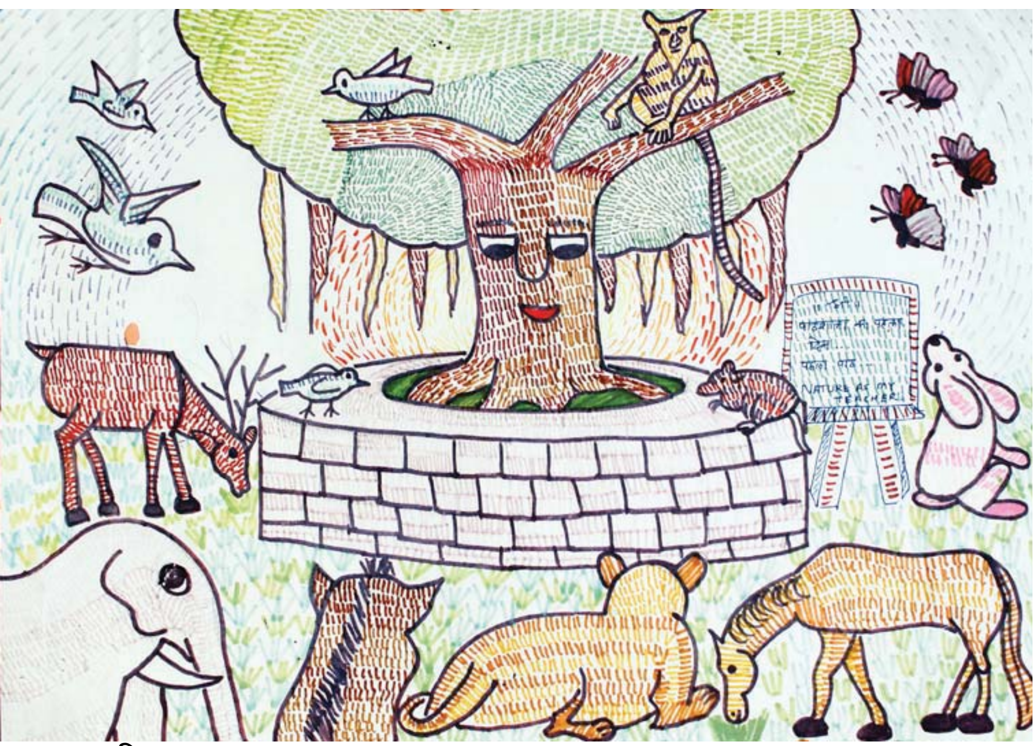

चित्र 3

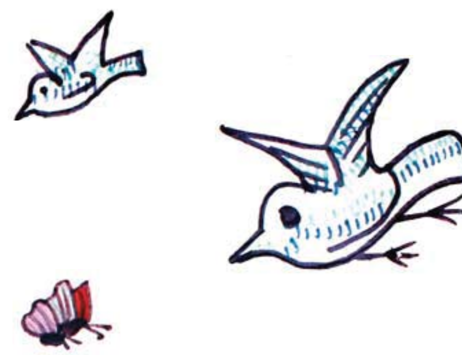

◀ अरुण कटूरी,
सातवीं, डीपीएस
लुधियाना

▶ सुहाना परवीन,
आठवीं, नरेन्द्रपुर,
परिवर्तन सीवान

एक पत्र

प्रिय चकमक साथियो

चकमक का हर अंक जैसे होली में रंगा होता है। मुझे तो बहुत अच्छा लगता है। मैं समझता हूँ हर बच्चे, जवान, बूढ़े को अच्छा लगना चाहिए। मेरी उम्र तो 70 से ऊपर हो चली है अब। फिर भी मज़ा आता है। भला उम्र के साथ बचपन की उमंग या जवानी की मस्ती क्यूँ खत्म हो?

चकमक हर अंक के साथ नए-नए प्रयोग करती रहती है। इसीलिए इसका नयापन कभी खत्म नहीं होता। मेरे सामने तो जब भी चकमक का अंक आता है तो मन में एक लहर-सी दौड़ जाती है। सब पढ़ न भी पाऊँ एक बार तो सारा अंक पलट जाता हूँ। सारे चित्र देख लेता हूँ व लगभग सभी कविताएँ और कुछ लेख या कहानियाँ तो पढ़ ही लेता हूँ। अब आप फरवरी-मार्च 2016 के अंक को ही ले लें। कोई मज़ाक नहीं एक अंक के लिए लगभग 150 आकर्षक चित्र ढूँढना। और हर चित्र की बात निराली। सभी को भाता है। और सभी के चित्र साथ साथ हैं – बड़े-बड़े चित्रकारों के और बच्चों के, और सब के सब कमाल के। आवरण का चित्र देखिए या फिर अतनु राय के या फिर पृ. 47-49 पर बच्चों के। क्या बात है बच्चों के चित्रों की! काफी तो गुलज़ार को निभाते हुएः

अगले महीने से हमने बस एक ही दिन तो तोड़ा था
घूम के फिर आ जाता था जो मौसम हमने छोड़ा था

मन तो है कि चित्रों के बारे में ही बात करता रहूँ पर शायद चकमक के पास इतनी जगह न हो। सो माफ किया।

क्या नहीं होता चकमक में? चित्र, कविताएँ, कहानियाँ, लेख, विज्ञान, फिल्मों की समीक्षा, पहेलियाँ, माथा पच्ची, हिन्दी-इतर भाषाओं से लेखों व कहानियों के अनुवाद इत्यादि। और लेख भी एक ही तरह के नहीं। कुछ सूचनात्मक हैं तो कुछ विवरणात्मक; कुछ पर्यावरण के बारे में तो कुछ जीव जन्तुओं व कीट-कबूतरों के बारे में। रुस्तम की रात हो या उदयन वाजपेयी की धूप या फिर हाजी नाजी की कहानियाँ। क्या खूब मन लगता है पढ़ने में! खुद भी पढ़िए औरों को भी सुनाइए। आखिर अगर सभी कुछ एक-सा होता/ तो दुनिया में चित्र न होते/ नृत्य न होते, गीत न होते.... रमेश उपाध्याय की ही बात नहीं आप नरेश सक्सेना को ही ले लें। हम सबको अच्छे बच्चों की तलाश रहती है पर किसलिए? पेज 10 पर आप शामली कि कविता देखें। वह तो केवल 12 वर्ष की है। क्या कविता लिखी है भाई! गज़ब।

और अनेक दिनों की तरह
इस दिन को कोई याद नहीं रखेगा
यह मामूली दिन था
पर मैंने इस दिन को लिख दिया
अपनी इस छोटी कविता में
मैंने इस दिन की याद बना दी है।

चकमक बनानेवालो, कविताओं के चुनाव में सच आपका कोई मुकाबला नहीं।

एक दो सुझाव। प्रचारात्मक लेख व कहानियाँ न ही हों तो अच्छा। अब भला बच्चों को क्या बताना कि चोरी नहीं करनी चाहिए या फिर तरस सहना अच्छा नहीं लगता। ये सब तो बच्चे सदा सुनते ही रहते हैं। एक और बात। आप लोगों को ज़रूर सोचना चाहिए कि 14-17 वर्ष के बच्चों के लिए भी एक पत्रिका होनी चाहिए। यह पत्रिका आप लोग ही निकाल सकते हैं। समाज इस बात के लिए तैयार है कि इस उम्र के बच्चे अब संजीदगी से गम्भीर सामाजिक व राजनैतिक मुद्दों पर बात करें।

रमाकान्त अग्निहोत्री

(लेखक जाने-माने भाषाविद् हैं।)

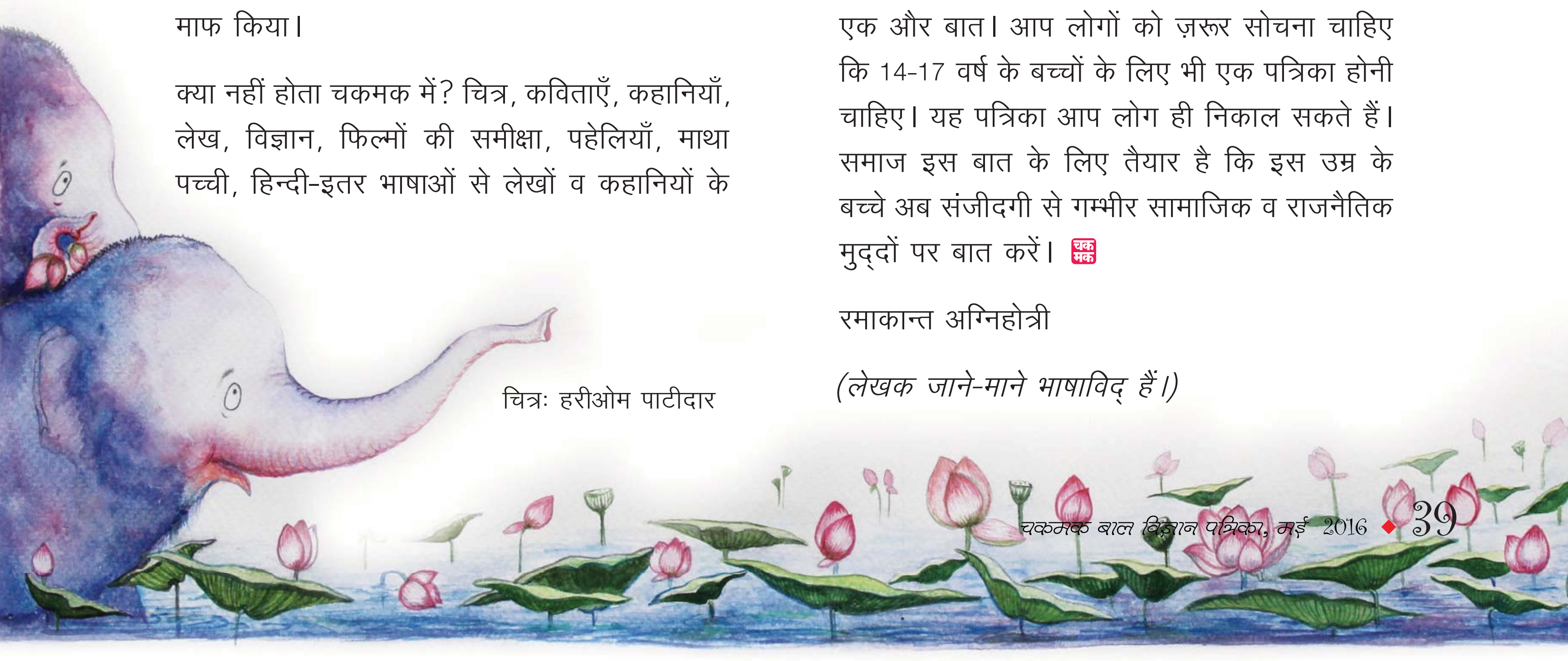

चित्रः हरीओम पाटीदार

चुनाव के बारे में

हमारे गाँव में पाँच लोग सरपंच का फॉर्म भरने गए थे। मेरे गाँव के लोगों को सरपंच रोज़ एक-एक दिन छोड़कर सेव-परमल, दारू आदि दे रहे थे। लोग, महिला, लड़कियाँ-लड़के आदि को सेव-परमल खाने में मज़ा आ रहा था। सरपंच के टीमवाले लोग मोटरसाइकिल या जीप पर डीग्गा लगाकर आदिवासी गाने चलाकर प्रचार करने जाते थे। लोग या सरपंच उसका नाम, चुनाव चिन्ह कागज़ में छापकर हर घर की दीवार पर अपना-अपना कागज़ चिपकाकर दूसरे घर चले जाते थे। और ऐसा करते-करते 3-4 दिन तक फल्या में कागज़ चिपकाकर लोगों को समझा देते और सरपंच का नाम, चुनाव चिन्ह बताकर चले जाते थे। और किसी-किसी का झगड़ा भी हो जाता है। लोग बोलते कि अच्छे सरपंच को जिताएँगे। हमारे गाँव में पाँच सरपंच हैं। उनका चुनाव चिन्ह निम्न है। पहले सरपंच का चुनाव चिन्ह गिलास था। दूसरे सरपंच का चुनाव चिन्ह ताला-चाबी था। तीसरे सरपंच रामियां का चुनाव चिन्ह हैण्डपम्प था। चौथे सरपंच का चुनाव चिन्ह चश्मा था। पाँचवें सरपंच का चुनाव चिन्ह फलों सहित नारियल का पेड़ था। सरपंच रोज़ लोगों को सेव, दारू आदि चीज़ें खिलाता था और बोलता कि चुनाव चिन्ह ताला-चाबी को भारी मतों से विजयी बनावें। दूसरा सरपंच आता और वो भी ऐसा ही कहता। किसी को दारू देते हैं तो किसी को पैसे देते हैं। और बोलते हैं कि मेरे यहाँ वोट डालना है। लोग उसकी बात सुनकर हाँ बोल देते हैं। मेरे गाँव में सब लोग बोल रहे थे कि भैरव पटेल को सब लोग वोट डालना क्योंकि वो कभी भी काम आ सकता है। वो तो पटेल है कुछ झगड़ा या दीपावली मनाएँगे तो किसको पूछकर मनाएँगे ऐसा बोल रहे थे। द्वारका सरपंच सब लोगों को (जो वोट डालता) एक सौ रुपए दिया था। और बोला कि मेरा चुनाव चिन्ह गिलास पर ध्यान देकर भारी मतों से विजयी बनाना है। दूसरा सरपंच एक-एक फल्या में पन्द्रह सौ रुपए दिया था। एक आदमी तो मोजाली, भीलखेड़ा, सावरदा, एक्कलवारा और मटली गाँव में ये पाँच सरपंच चुनाव लड़ रहे थे। प्रतिनिधि जिला पंचायत, जनपद आदि में फॉर्म भरवाए थे। इन सभी गाँवों में 13 जनवरी को चुनाव हुआ था। मोजाली गाँव में एक व्यक्ति चुनाव चिन्ह गिलासवाला जीत गया था। मेरा कहना यह है कि लोगों को धमकी देके दूसरा लोगों को ज़बरदस्ती वोट डालना नहीं चाहिए। लोग अपने दिल-दिमाग से वोट डालना चाहिए।

— सचिन किराड़े, आधारशिला लर्निंग सेंटर सेंधवा, म. प्र.

चित्रः विभूति पाण्डे

कुमकुम रॉय

राष्ट्र और राष्ट्रवाद

आजकल राष्ट्र और राष्ट्रवाद को लेकर बहुत चर्चा हो रही है। इस चर्चा की शुरुआत में हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि राष्ट्र एक बहुत पुराना शब्द है। जबकि राष्ट्रवाद उसकी तुलना में एक नया शब्द है। तो देखते हैं कि ये शब्द आए कैसे और इनको हम किस तरह समझें?

राष्ट्र शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन है। इसके पहले उदाहरण हमें वैदिक साहित्य से मिलते हैं। लेकिन ऐसे प्रचीन साहित्य में राष्ट्र शब्द का प्रयोग आमतौर पर राजतंत्र के सन्दर्भ में ही होता था। अगर हम वी एस आपटे के प्रसिद्ध शब्दकोश प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी को देखें तो पाएँगे कि राष्ट्र का अर्थ कई अलग-अलग सन्दर्भों में हैं – राज्य, प्रदेश, देश, ज़िला, इलाका। एकआध बार किन्हीं खास इलाकों के लिए इसका प्रयोग हुआ है। जैसे महाराष्ट्र। यह ध्यान देनेवाली बात है कि राष्ट्रवाद शब्द इस शब्दकोश में कहीं नहीं है। यानी बेशक राष्ट्र एक प्राचीन संस्कृत शब्द है, लेकिन राष्ट्रवाद शब्द नया है।

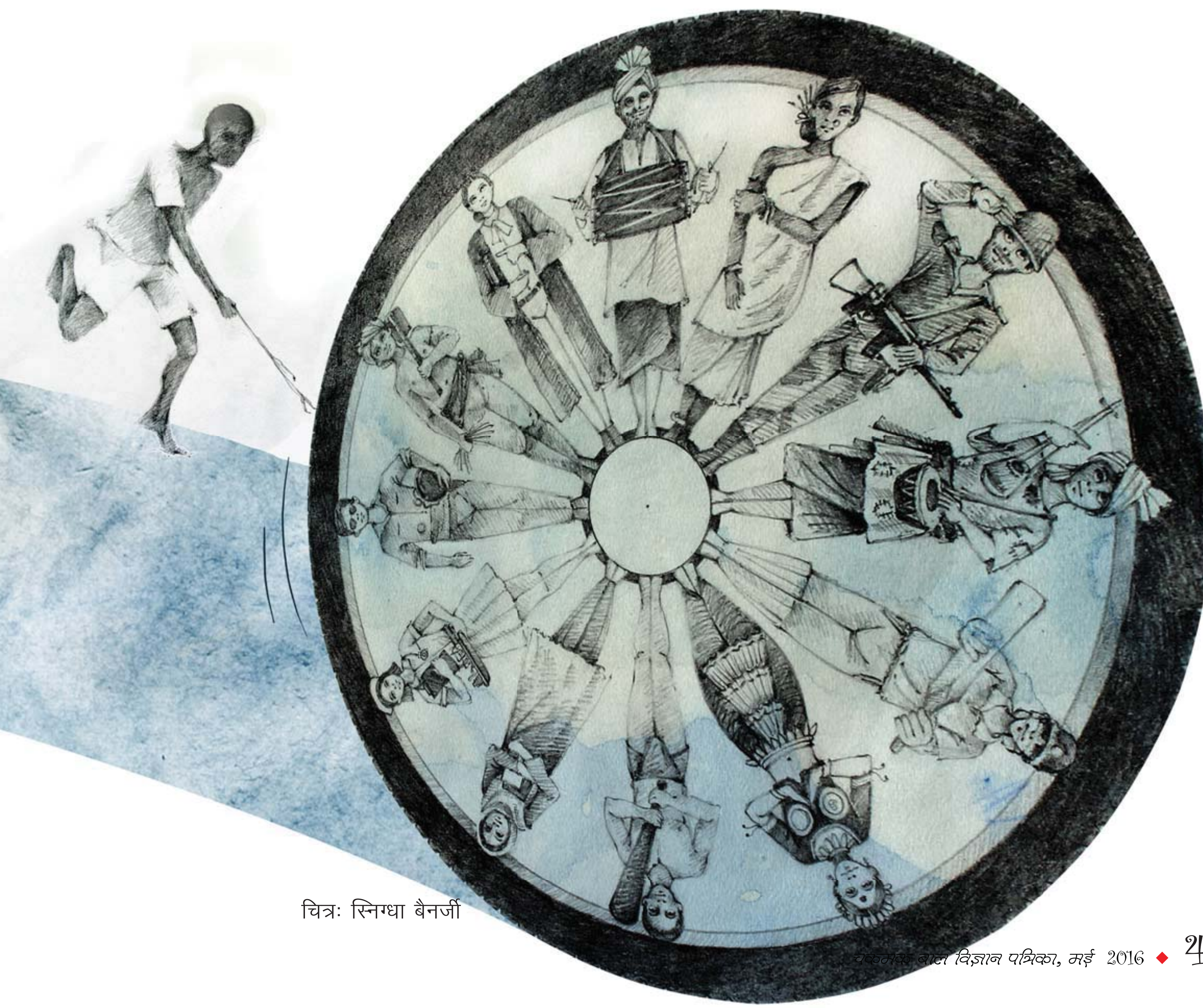

चित्रः स्निग्धा बैनर्जी

क्या यह बात बहुत मुश्किल है? हाँ भी और नहीं भी। कई बार एक नई गतिविधि को समझने और समझाने के लिए हम पुराने शब्दों को एक नया अर्थ देते हैं। इसलिए कोई शब्द किस सन्दर्भ में इस्तेमाल हो रहा है रहा है इस पर ध्यान देना ज़रूरी है। मसलन करीब दो या तीन दशक पहले अगर हम अँग्रेज़ी शब्द माउस बोलते तो आम तौर पर इसे चूहा ही समझा जाता। लेकिन कम्प्यूटर का प्रयोग बढ़ने के साथ-साथ जब इसके एक उपकरण का नाम माउस रखा गया तो चूहा अर्थ का इस्तेमाल खत्म तो नहीं हुआ लेकिन माउस बोलने पर अकसर कम्प्यूटर का माउस ही समझा जाता है। क्या तुम इस तरह के शब्दों के और उदाहरण ढूँढ सकते हो?

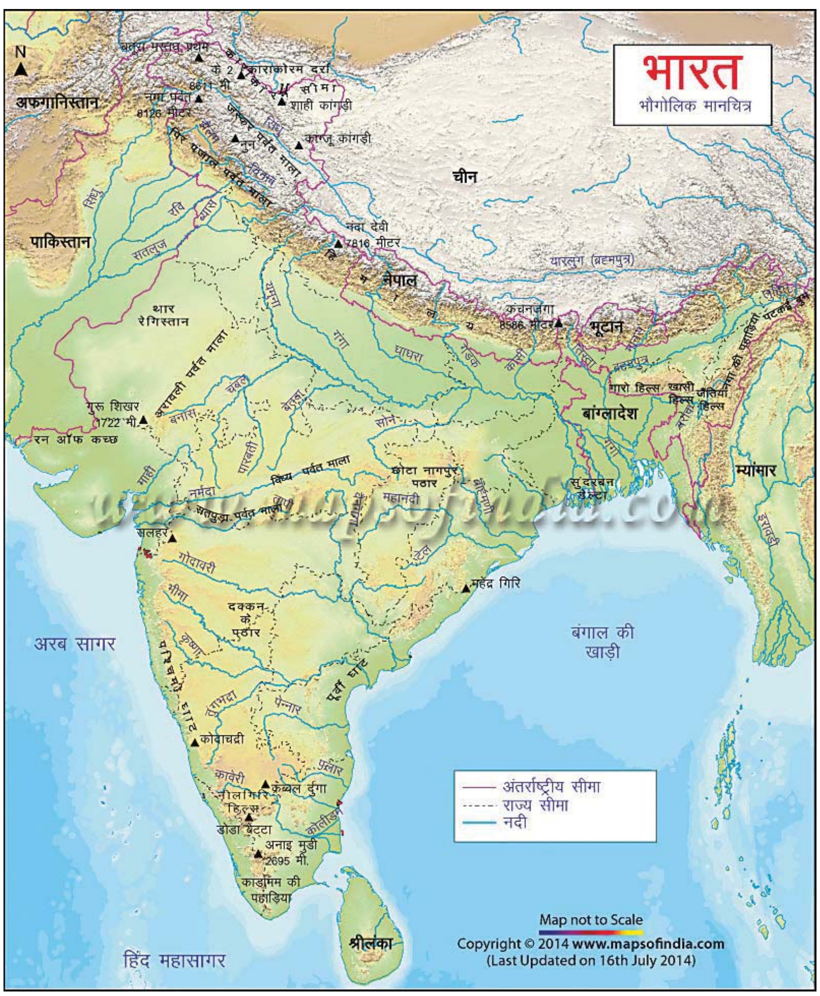

अब बात करते हैं राष्ट्रवाद की। यह अँग्रेज़ी शब्द नैशनलिज़्म का अनुवाद है। इसका प्रयोग 19वीं सदी से शुरू हुआ। 20वीं सदी में और अब 21वीं सदी में यह व्यापक रूप में दिखने लगा है। अगर हम आधुनिक दुनिया का राजनैतिक मानचित्र देखें तो इसमें बहुत सारे राष्ट्रों के बारे में जानकारी मिलती है। इन में से ज़्यादातर राष्ट्रों का विकास इसी समय यानी 19वीं सदी से हुआ था। ऐसा क्यों और कैसे हुआ? ज़ाहिर है कि यह एक बड़ा सवाल है जिसका कोई एक जवाब नहीं हो सकता। लेकिन कुछ बातें जो उभर के आती हैं वो हैं –

दुनिया में एशिया, अफ्रीका और अमरीका में अधिकतर राष्ट्रों का विकास इस समय हुआ और इनके विकास में राष्ट्रवाद आन्दोलनों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। 15वीं शताब्दि से युरोप के शक्तिशाली देशों ने युरोप के बाहर नए इलाकों पर अधिकार करने की कोशिश की। इन इलाकों में उन्होंने उपनिवेशों की स्थापना की। उपनिवेश बनाने के कई आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक कारण थे। जिन युरोपीय देशों ने उपनिविशों की स्थापना की उनमें पुर्तगाल, स्पेन, इंग्लैण्ड, फ्रांस, हॉलैण्ड और बाद में जर्मनी प्रमुख थे। भारत में पुर्तगाल, इंग्लैण्ड और फ्रांस के उपनिवेश थे। लेकिन 18वीं सदी के अन्त तक आते-आते इंग्लैण्ड के उपनिवेश ही सबसे ज़्यादा फैले थे।

जहाँ-जहाँ उपनिवेश बने वहाँ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्र में परिवर्तन आया। कुछ हद तक इन परिवर्तनों की प्रतिक्रिया के रूप में राष्ट्रवादी आन्दलनों की शुरुआत हुई। जिसका लक्ष्य था उपनिवेशवादी शासन समाप्त करके, आज़ादी लाना। या देश को स्वतंत्र बनाना।

राष्ट्रवादी आन्दोलन में एक नए आधार पर एकता की कल्पना की गई – स्वदेशी और विदेशियों के बीच अन्तर स्पष्ट करने की कोशिश और राष्ट्र की एक पहचान बनाना, मुख्य है।

क्या राष्ट्र की पहचान भौगोलिक आधार पर हो सकती है? इसका कोई आसान जवाब नहीं है। अगर हम भारत का नक्शा देखें तो पहाड़ और

समुद्र से घिरे इस देश की कुछ प्राकृतिक सीमाएँ नज़र आएँगी। लेकिन पूर्व और पश्चिम की पहाड़ों की सीमाएँ उतनी स्पष्ट नहीं हैं। और भारत के अन्दर भी भौगोलिक विविधता देखने को मिलती है। उत्तराखण्ड से केरल की तुलना करें या मीज़ोरम के साथ गोआ की तो क्या-क्या समानताएँ देखने को मिलेंगी और क्या क्या अन्तर?

एक अन्य उदाहरण देखें। अफ्रीका के राजनैतिक नक्शे को देखो – कितने राज्यों की सीमाएँ सीधी लकीरों से बनी हैं? असल में इस महादेश पर युरोप के जिन राष्ट्रों ने उपनिवेश बनाए थे उन्होंने इस पूरे महादेश को इस तरह से बाँट दिया था – और इसी आधार पर नए राष्ट्रों का विकास हुआ। क्या इस प्रकार की कृत्रिम सीमाएँ स्थाई हो सकती हैं?

भूगोल के अलावा कई लोग (विद्वान और आम जनता) मानते हैं कि राष्ट्र का आधार भाषा की समानता हो सकता है। बांग्लादेश का इतिहास इसका एक प्रमुख उदाहरण है। 1947 में जब स्वतंत्र भारत और पाकिस्तान की स्थापना हुई तो पाकिस्तान के दो हिस्से थे – पश्चिमी भाग जहाँ उर्दू, पंजाबी, और सिन्धी जैसी भाषाएँ बोली जाती थीं और पूर्वी भाग जहाँ बांग्ला बोली जाती थी। इन दो हिस्सों के बीच भौगोलिक अन्तर था हालाँकि दोनों में यह समानता थी कि इनमें मुसलमान अधिक संख्या में थे। 1950 के दशक से ही पूर्व और पश्चिम के हिस्से के बीच तनाव दिखने लगा। और 1971 में बांग्लादेश एक स्वतंत्र राष्ट्र बना।

बांग्लादेश के बनने के इतिहास से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ धार्मिक एकता किसी भी आधुनिक राष्ट्र का आधार नहीं बन सकती है। एक अन्य तरीके से देखें तो भारत भी इसका एक उदाहरण है। क्योंकि यहाँ भी विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय के लोग रहते हैं।

एक दूसरी बात पर आते हैं। अगर हम 1980 के दशक यानी लगभग 30 साल पहले के सोवियत संघ के नक्शे को देखें तो पाएँगे कि यह एक विशाल देश है। लेकिन दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में कई नए छोटे राष्ट्र देखने को मिलते हैं। इनमें कज़ाकिस्तान, तुर्कमिन्स्तान, उज़्बेकिस्तान जैसे राष्ट्र शामिल हैं। यह सिर्फ एक उदाहरण है कि राष्ट्र की सीमाएँ स्थाई नहीं होती हैं। विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों से बदलाव आ सकते हैं। युरोप के मानचित्र में भी बदलाव नज़र आते हैं। इन बदलावों को समझना और राष्ट्र और राष्ट्रवाद के साथ इनका सम्बन्ध ढूँढ निकालना ज़रूरी है।

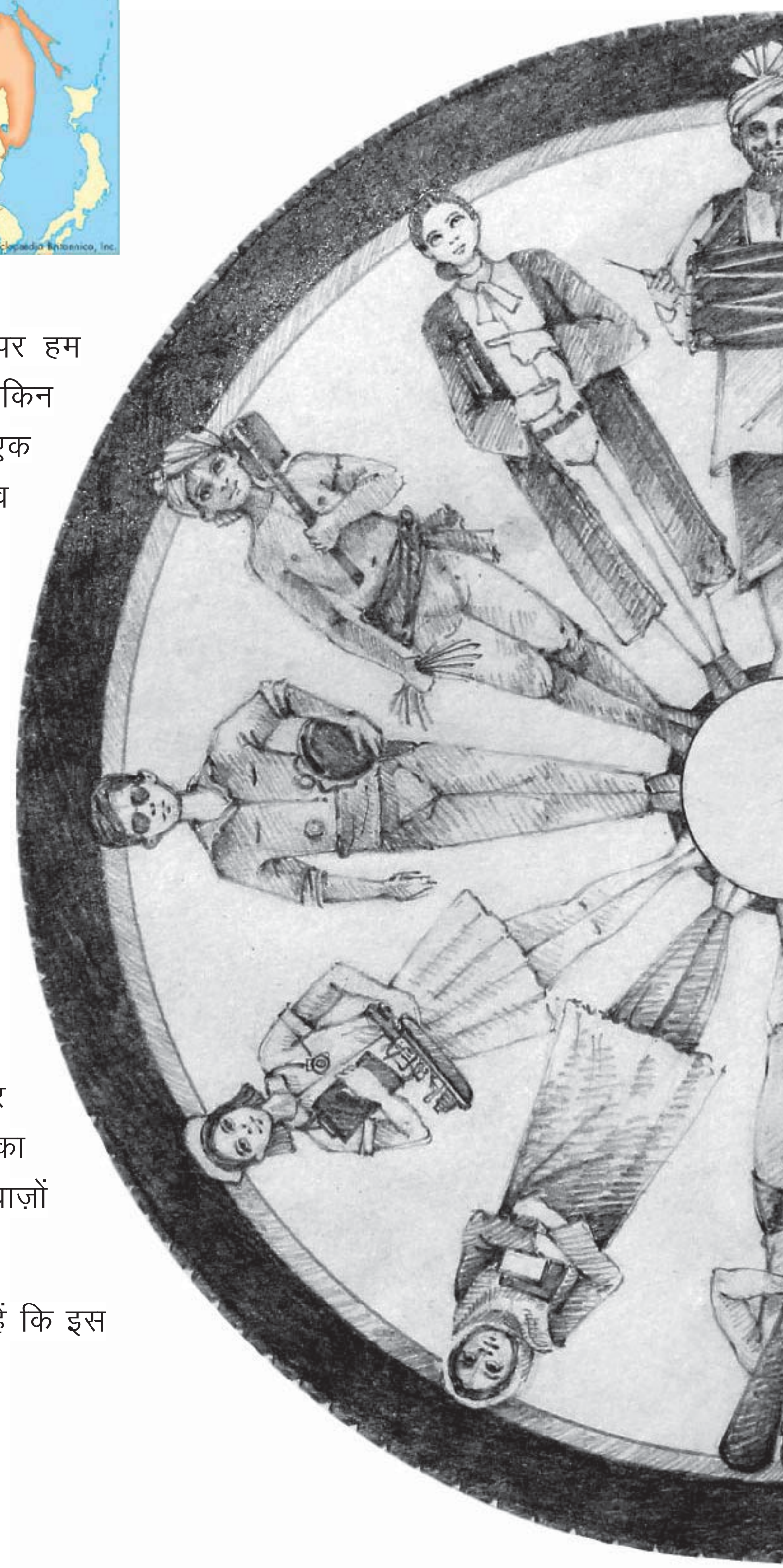

अन्त में आते हैं राष्ट्र की सुरक्षा की बात पर। आमतौर पर हम सोचते हैं कि सैनिक राष्ट्र की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं। लेकिन साथ-साथ हमें इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि राष्ट्र सिर्फ एक ज़मीन का टुकड़ा भर नहीं है। सही मायने में राष्ट्र का अस्तित्व तब ही सम्भव होता है जब इनके निवासी या नागरिक एक दूसरे को सम्मान दें और सभी को अपने-अपने विकास के समान मौके मिलें। अगर नागरिकों में विभाजन, मतभेद या टकराहटें होंगी तो समस्याएँ तो उभर के आएँगी ही। ये विभाजन आर्थिक आधार पर, अमीर और गरीब के बीच हो सकता है। सामाजिक आधार पर जातिप्रथा जैसी व्यवस्था से, प्रादेशिक आधार पर विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के कारण हो सकते हैं। सभी असमानताओं को खत्म करना आसान नहीं है। लेकिन राष्ट्र के अन्दरूनी विकास के लिए सभी नागरिकों के मौलिक अधिकार सुरक्षित होने चाहिए। क्या हम एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना कर सकते हैं जिसमें सभी को अपने विकास के मौके मिलें, स्वास्थ्य और शिक्षा आसानी से प्राप्त हो। रोज़गार मिले। आर्थिक विकास का लाभ सभी उठा सके। एक-दूसरे की संस्कृति और रीति रिवाज़ों को समझकर उनका सम्मान कर सकें?

यही हमारे लिए एक बड़ी चुनौती है। पर हम उम्मीद करते हैं कि इस चुनौती का सामना हम मिलकर कर पाएँगे। चक मक

(सभी नक्शे साभार इंटरनेट)

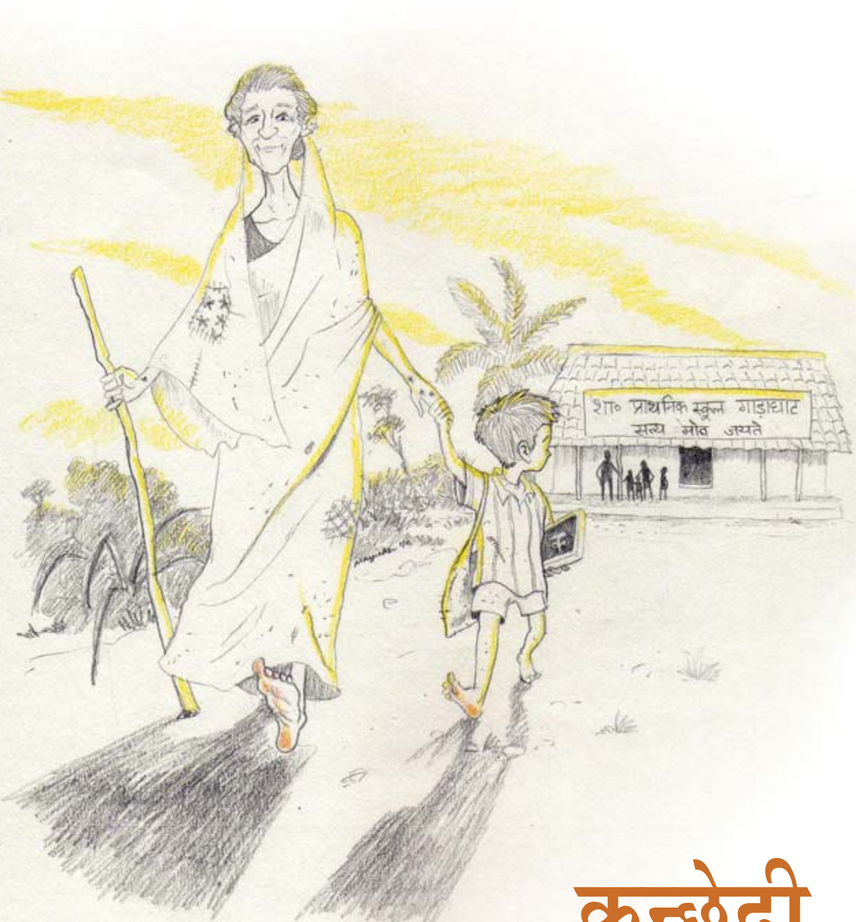

चित्रः मयूख घोष

कन्छेदी

सुशील शुक्ल

कन्छेदी मेरे साथ पाँचवीं में पढ़ता था। हमारा दो कमरे का स्कूल था। एक कमरे में चौथी और पाँचवीं बैठती थी। एक कमरे में पहली से तीसरी के बच्चे। बच्चे ज़्यादा होते थे पर मुझे जगह कम नहीं पड़ती थी। पर कुछ बच्चे अकसर दुबके-दुबके बैठे रहते थे। कन्छेदी उनमें से एक था।

कन्छेदी पढ़ने में होशियार था। गणित की कॉपी उसने किसी तरह पन्ने जोड़-जोड़कर बनाई थी। सत्यप्रकाश गाँव के पण्डितजी का बेटा था। गणित में बहुत कमज़ोर। उसने एक दिन कन्छेदी की गणित की कॉपी माँग ली। कन्छेदी मना भी कैसे करता! सत्यप्रकाश की कॉपी बन गई थी। मास्टर जी से शाबाशी भी मिल गई थी। कन्छेदी रोज़ अपनी कॉपी सत्यप्रकाश से माँगता। सत्यप्रकाश रोज़ ही कोई बहाना बना देता। रोज़ ही मास्टर जी कन्छेदी को मुर्गा बना देते थे। यही अप्रैल के दिन थे। परीक्षा सर पर थी। अब तो कॉपी दिखानी ही दिखानी थी।

एक दिन कन्छेदी अपनी दादी को लेकर स्कूल आ गया। कन्छेदी की दादी आईं। आते ही पहले उन्होंने अपने पल्लू को हाथों में पकड़कर मास्टरजी के पैर छुए। मास्टरजी ने आशीर्वाद दिया। फिर बहुत ही झेंपते हुए कन्छेदी की दादी ने मास्टरजी के सामने अपनी बात रखी, "गुरुजी के बेटा हमारे कन्छेदी की कॉपी नहीं दे रहे हैं मास्टरजी।" मास्टरजी ने सत्यप्रकाश को पास बुलाया। और प्यार भरी सख्ती दिखाते हुए पूछा, "हम ये क्या सुन रहे हैं सत्यप्रकाश!" ठुड्डी के नीचे गर्दन में एक कँचे जैसे उभार होता है। सत्यप्रकाश के गले में यह उभार ज़रूरत के हिसाब से थोड़ा बड़ा हो गया था। उसने उसे पकड़ते हुए कहा, "गौ की सौं गुरुजी हमने कन्छिदिया की कॉपी उसे वापिस कर दी है।" मास्टरजी ने आँखें तरेरते हुए कन्छेदी और कन्छेदी की दादी दोनों को लताड़ा, "तुम्हें क्या लगता है सत्यप्रकाश बाम्हन होके गौ की झूँठी सौं खा रहा है!" ...

मामला पलट गया था। कन्छेदी की दादी और कन्छेदी दोनों समझ गए थे। दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा। जैसे एक-दूसरे से पूछ रहे हों कि अब क्या करें? उन्हें मालूम था कि जल्दी ही कुछ करना होगा। दादी ने एक ज़ोरदार तमाचा कन्छेदी को जड़ दिया। और बोलीं, "सही तो कह रहे हैं गुरुजी पण्डित आदमी झूठ बोलेगा क्या? चल समेट बस्ता। घर चल तेरे को वहीं ठीक करूँगी।" कन्छेदी ने फटी किताबें अपने फटे बस्ते में रख लीं। कन्छेदी की आँखें भर-भर आ रही थीं। और उसकी दादी की भी। दादी जानती थीं कि अगर कन्छेदी आज स्कूल में रहा तो उसकी पिटाई तय है। और सिर्फ घर ले जाने के इसी बहाने से उसे बचाया जा सकता है। मास्टरजी को अगर थोड़ी देर के लिए छोड़ भी दिया जाए तो उस दिन उस कमरे में ऐसा कोई नहीं था जो यह नहीं जानता था कि कन्छेदी की कॉपी सत्यप्रकाश के पास ही है। उस दिन हम सबके पास सच था पर हम में से कोई नहीं जानता था कि उसका क्या करें? वह सच एक मरी मक्खी की तरह मेरी ज़िन्दगी में आज भी पड़ा है। और जब-जब वह याद आता है तब-तब उल्टी-सी आने लगती है।

मैदान की कहानी

नील, नौ साल, सवाईमाधोपुर, राजस्थान

हम हर रविवार को क्रिकेट खेलने जाते हैं। हमारे घर से मैं और दीदी। मेरे दोस्त सोनू औरों के घर से रामरेश भैया, निशा दीदी, मनीषा दीदी, सोनू और उनके रामहरि मामा। मेरी मम्मा और पापा भी हमारे साथ जाते हैं। मम्मा मैदान में साइकिल चलाना सीखती हैं और पापा हमारे साथ क्रिकेट खेलते हैं।

चित्रः शुभम लखेरा

एक दिन हम क्रिकेट खेलने गए तो मैदान में एक छोटा-सा पिल्ला आ गया। वह हमारे मैदान में खेलने लग गया। बारिश का मौसम था। जैसे ही हम खेलने लगे तो बारिश आना शुरू हो गई। हम सब पेड़ों के नीचे छिप गए और पिल्ला झाड़ियों में छिप गया। फिर बारिश आना बन्द हो गई। पिल्ला भागकर गीली मिट्टी में लेटने लग गया। उसे गीला-गीला लग रहा था। मेरी मम्मा ने सोचा कि इसको गीली मिट्टी में मज़ा आ रहा है तो हम इसको गीली मिट्टी से ढँक देते हैं। मम्मा ने उसे पूरा ढँक दिया। बस उसकी आँख और नाक दिख रही थी। पिल्ला मज़े करते-करते ही सो गया। फिर जैसे ही पिल्ला तेज़ साँस लेने लगा तो मिट्टी पर दरार आना शुरू हो गई। पर पिल्ला उसमें लेटा रहा। हम क्रिकेट खेलते रहे। खेलकर हम घर जाने लगे तब भी पिल्ला उसी तरह मज़े से लेटा रहा।

जब हम घर आ रहे थे तो रास्ते में दीदी की नज़र एक तितली पर पड़ी। दीदी ने देखा कि यह तितली तो फड़फड़ा रही थी। दीदी ने कहा, "पापा, यह तितली इतना फड़फड़ा क्यों रही है?"

फिर सारे बच्चे और पापा तितली को देखने लगे। हमने गौर से देखा कि तितली के पंख को एक मकड़ी ने बहुत तेज़ पकड़ रखा है। मकड़ी तितली को छोड़ ही नहीं रही थी। फिर हमने सोचा हम इसको बचा लेते हैं। फिर रामरेश भैया ने विकेट से तितली का पंख दबाया और एक डण्डी से मकड़ी को हटा दिया। रामरेश भैया ने ऐसे हटाया कि दोनों को ही नुकसान ना हो। तितली थोड़ी देर तक ज़मीन पर पड़ी रही फिर झटके-से उड़ गई। मकड़ी चलते-चलते घासों में चली गई।

पापा बोले, "वह तितली शायद मकड़ी का खाना थी। हमने मकड़ी को उसका खाना नहीं खाने दिया।" चक मक

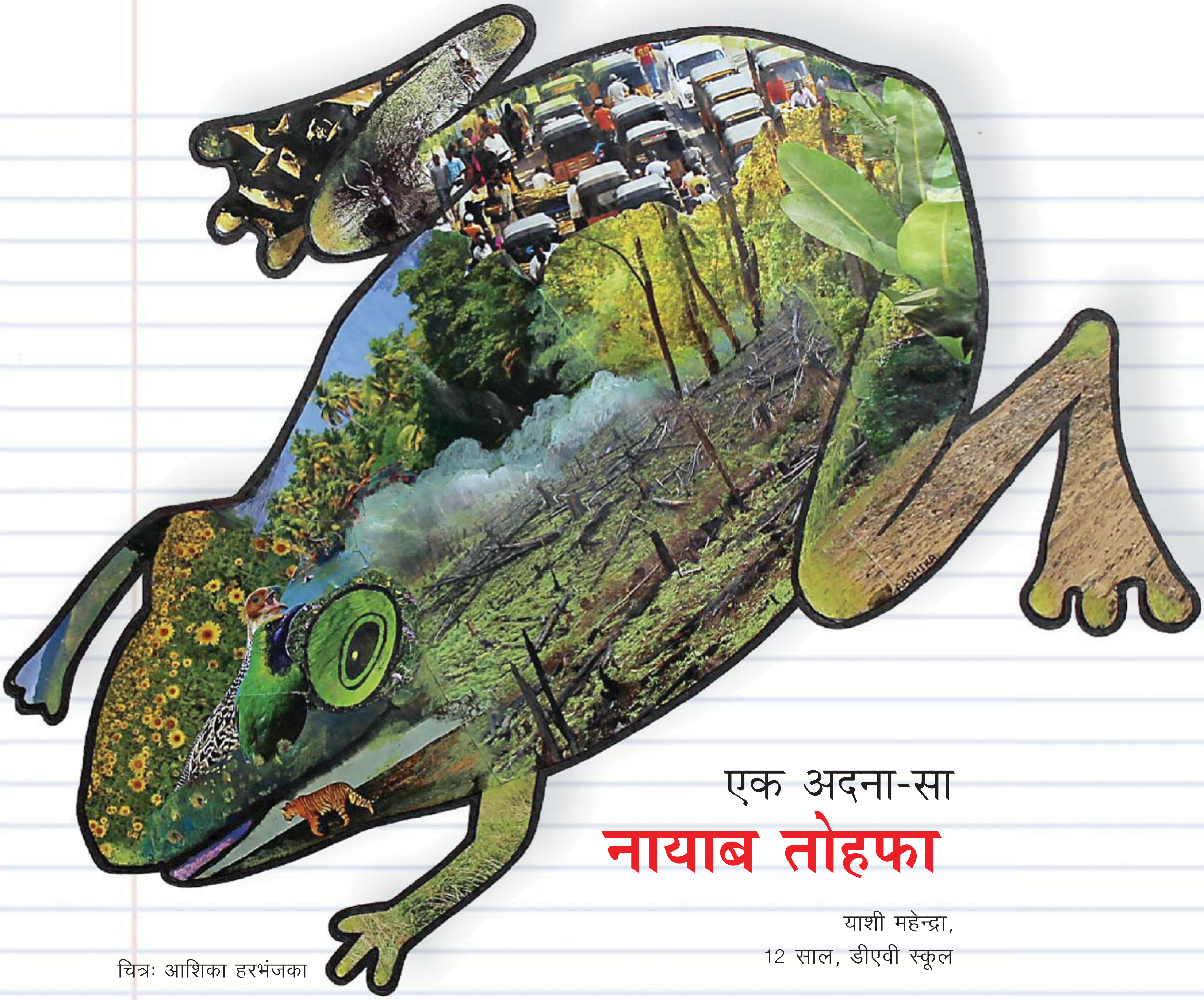

चित्रः आशिका हरभंजका

एक अदना-सा
नायाब तोहफा

याशी महेन्द्रा,
12 साल, डीएवी स्कूल

कुदरत से जो मिले हैं नायाब तोहफे हमें
शामिल है उसमें सब, एक अदना सा मेंढक भी
और वो सब भी जो
हमारे कल को बदलने के बीज लिए हैं -
पानी और पेड़
हम किए जा रहे हैं जिन्हें बरबाद
जिनकी कमी अखरेगी ज़रूर कल और उसके बाद
काटे जा रहे हैं पेड़ दिनोंदिन
पृथ्वी पे जीवन की ओर रस्ता
पेड़ों से होकर ही गुज़रता है
साँस लेना और जीना उन्हीं की बदौलत है
हम बरबाद किए जा रहे हैं पानी
हम धरती से हैं
धरती हमसे नहीं
सोचते हैं हम
और काटते जा रहे हैं पेड़
काश रख पाते हम अपने जंगलों को हरा,
और समन्दर को नीला नीला...

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल